[illegible]

[illegible]

प्रस्तावना

प्राचीन जैनाचार्योंने अपने वीर शिरोमणि आदर्श पुरुषोंकी उपदेशप्रद एवं मनोरंजक कहानियाँ लिखकर जैन समाजके लिये बड़ा भारी उपकारका काम कीया है। वास्तवमें उन महा पुरुषोंने अपना सारा जीवन परोपकारके कार्यमें ही व्यय कीया है। इस तरहके उपदेशप्रद ग्रन्थोंकी रचना कर वे अपनेको संसारमें अमर बना गये हैं। हमारा यह ग्रन्थ भी प्राचीन जैनाचार्यका निर्माण कीया हुआ है, उसीका यह अनुवाद है। इसमें शुकराजकी जीवन घटनाओंका उल्लेख कीया गया है। इसके अतिरिक्त प्रसंगोपात उपदेश प्रद बातें भी दी गई हैं।

अतः इस ग्रन्थमें यही बात अधिक दिखाई गई है, कि "संसारमें प्राणीलोग किस तरह कर्म उपार्जन करते हैं और उनका वे किस तरह भोग करते हैं।" शुकराजका सारा जीवन इसी विषयपर वर्णित हुआ है।

शुकराजके [illegible]

आश्चर्यचकित होकर छः मास पर्यन्त गूँगा बना रहता है। माता पिता उसे रोगग्रस्त समझकर नाना उपचार किया करते हैं। किन्तु शारिरिक व्याधि न होनेके कारण उसका गूँगापन नहीं मिटता है। एक दिन राजा और रानी श्रीदत्त केवलीके पास आकर अपने पुत्र के गूँगापनका कारण पूछते हैं, इसपर केवली महाराज शुकके पूर्व भवका वृत्तान्त सुनाकर उसे बोलनेके लिये आदेश करते हैं। शुकराज इस प्रकार संसारकी आश्चर्य लीलाको जानकर अपने जन्मदाताओंको माता पिता कह कर पुकारता है। पुत्रका गूँगापन दूर होनेके कारण माता-पिता बड़े ही प्रसन्न होते हैं।

शुकराजके पूर्व भव राजा जितारीके भवमें श्रुतसागर आचार्य महाराजने विमलाचल सिद्धक्षेत्र तीर्थकी महिमा पर धर्मोपदेश दीया यह बड़ा ही उपदेशप्रद है। यह कथा अवश्य पढ़नी चाहिये।

छटें परिच्छेदमें श्रीदत्त और शंखदत्तकी कथा आती है, यह बड़ी ही उपदेशप्रद है। इस कथासे संसारकी असारताका एक अच्छा परिचय मिलता है। मनुष्य किस प्रकार कुकर्म करता है। और उसे उसका किस तरह बदला मिलता है। यह बात इस कथासे ठीक मालूम हो जाती है। अस्तु,

हमारे प्रेमी पाठकोंसे नम्रनिवेदन है, कि इस पुस्तकके भीतर किसी तरहकी त्रुटि रह गई हो तो उसे सुधार कर पढ़ें।

२०१ हरिसनरोड कलकत्ता।	आपका काशीनाथ जैन।

एक दिन, प्रेमियोंके चित्तको चुरानेवाली प्यारी वसन्तऋतुमें राजा अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर क्रीड़ा-वनमें विहार करनेके लिये आये। यहाँ आकर राजाने अपनी उन स्त्रियोंके साथ उसी प्रकार जलक्रीडा आदि नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ कीं, जैसे हस्तिनियोंके साथ हाथी प्रेमसे विहार करता फिरता है। उस वनमें एक बड़े ही सुन्दर और पुष्पोंके भारसे लदे हुए छत्रके समान आम्रवृक्षको देखकर राजा उसकी बड़ाई करते हुए कहने लगे,—"हे पृथ्वीके कल्पवृक्ष! मीठे फलोंके देनेवाले आम्रवृक्ष! तेरी छाया संसारको बड़ी प्यारी लगती है, तेरे पत्तोंकी श्रेणी अनुपम मङ्गलको देनेवाली है, तेरी मंजरियाँ मधुर फलोंको उत्पन्न करनेवाली हैं, तेरा रूप बड़ा ही सुन्दर है, इसीलिये तो हम लोग तुझे सब वृक्षोंमें प्रधान मानते हैं। हे आम्रतरु! तेरा सारा अङ्ग प्राणियोंके उपकारके ही निमित्त है, इसलिये तुझसे बढ़कर प्रशंसाका पात्र भला और कौन वृक्ष हो सकता है? उन [illegible] ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको धिक्कार है, जो [illegible] नहीं आते और उन [illegible]को भी धिक्कार है, [illegible] वृक्षोंके नाम तेरी बराबरी [illegible] वृक्षोंका [illegible] करते हैं।"

[illegible] विचार [illegible] इसी समय [illegible] [illegible] [illegible] दिशाकुमारोंके लिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] शुकराज, [illegible]

जिसके शृंगार-रसके समान, अपनी कामकी स्त्रियोंकी ओर देख-कर राजा कहने लगे—"ओह! विधाताकी मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा है, जो मैंने ऐसी अलौकिक सुन्दरी स्त्रियाँ पायी हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि ऐसी स्त्रियाँ संसारमें मुश्किलसे ही किसी बड़े भाग्यसे मिलेंगी; क्योंकि संसारमें कलहकारी ही स्त्रियाँ हैं—और प्रत्येक ऐसी स्त्रियाँ मनोहर कहाँ?"

जैसे समुद्र [illegible] जब वह अपनी मर्यादा छोड़कर बाहर आ जाती है, वैसे ही ऊपर लिखे विचार मनमें उत्पन्न होते ही राजाका चित्त चंचल होने लगा। इसी समय उस भवनके पेड़की डालपर बैठे हुए एक तोतेने मनुष्य की बोली बोलकर [illegible] कहा,—"[illegible] [illegible] [illegible] होता! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं।"

यह सुनते ही राजाने अपने मनमें सोचा,—"यह तोता तो [illegible] ही होता है। इसने मुझे इस [illegible] [illegible] करते देख, मुझे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। पर [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।"

[illegible]

आ पहुँचे। घोड़ेको देखते ही राजा झटपट उसपर आ सवार हु
और उस तोतेके पीछे-पीछे चलने लगे। यद्यपि वहाँ राजा
सिवा और भी बहुतसे आदमी मौजूद थे, तथापि राजाके सि
और कोई उस तोतेकी बोली नहीं समझ सकता था। इसीलि
राजाको इस तरह एकाएक घोड़ेपर सवार होकर जाते दे
मन्त्री आदिको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे,—"यह रा
को एकाएक क्या सूझा, जो इस तरह जल्दीके साथ घोड़ा मंग
कर चले जा रहे हैं?" यही सोचकर मन्त्री आदि कई राजक
चारी बड़ी दूरतक उनके पीछे पीछे चले गये, पर अन्तमें राजा
का कोई और छोर नहीं देख, निराश होकर लौट गये।

आगे आगे वह तोता उड़ता जाता था और पीछे-पीछे रा
घोड़ा दौड़ाये चले आते थे। इस तरह जाते-जाते उन लोगों
पाँच सौ योजनका सफर तै कर डाला, पर न जाने किस दै
शक्तिके प्रभावसे न तो राजाको ही कुछ श्रम मालूम हुआ, न उस
घोड़ेको। जैसे कदापि प्रमादसे मनुष्यको दूसरा जन्म प्र
होता है, वैसेही उस दिव्य [illegible] आकर्षणके लिये [illegible]
[illegible] एक बड़े भारी जङ्गलमें आ पहुँचे [illegible] कहा है, [illegible]
[illegible] आकर्षण
[illegible] आदिका पूरा [illegible]
[illegible] राजा मृगध्वज [illegible]
[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]

तो किसीपर प्रसन्न होते हो, न किसीको कुछ देते हो, तोभी सब लोग तुम्हारी आराधना करते हैं। तुम निर्मम हो—ममतासे परे हो—तोभी इस जगत्‌के रक्षक हो और निःसङ्ग होते हुए भी इस जगत्‌के प्रभु हो। तुम लोकोत्तर रूपवान होने हुए भी निराकार हो। हे भगवन्! ऐसे तुमको मैं नमस्कार करता हूँ।"

राजाकी मधुर और ऊँचे स्वरसे की हुई वह स्तुति उसी मन्दिरके पासवाले आश्रममें रहनेवाले गाङ्गिल-ऋषिके कानोंमें भी पड़ी। यह सुनते ही जटा-वल्कल-धारी ऋषि किसी कामके बहाने अरिहन्त महाराजके मन्दिरमें आये। वहाँ पहुँचकर प्रशस्त विद्यासे भरपूर हृदयवाले वे ऋषि, ऋषभदेव स्वामीकी भक्ति-पूर्वक वन्दना कर, मनोहर, श्रोत्रप्रिय और तत्काल रचे हुए पदोंमें जिनेश्वरकी इस प्रकार स्तुति करने लगे:—

"तीनों लोकोंका उपकार करनेमें समर्थ, अनन्त शोभाओंके स्वामी, हे त्रिजगदेक-नाथ! तुम्हारी जय हो। नाभिराजाके ऊँचे कुलरूपी कमलवनमें विचरनेवाले हंसके समान, मरुदेवा माताकी कोखरूपी सरोवरके राजहंसके समान, हे त्रिभुवन-जनवन्दनीय! तुम्हारी जय हो। जो तीनों लोकोंके मनुष्योंके मनरूपी काकको (चकवेको) शोक-रहित करनेवाले सूर्यके समान हैं; जो अन्यान्य देवताओंके गर्वको खर्व कर निर्मल, निरुपम और निःसीम महिमा-रूपिणी कमलाके विलास करने योग्य कमलाकरके समान हो रहे हैं आत्मिक स्वभावके रस और ज्ञान-दर्शन-जनित भक्तिकी सम्मिलित प्रेरणाके कारण जिनके पद-

कल्पोंवर देवता, किन्नर और नरोंके राजा अपने नमित मुकुटों-वाले मस्तकको झुकाते हैं, जिन्होंने रागद्वेष आदि सब विकारों-का ध्वंस कर डाला है, उन तीर्थङ्कर देवताकी जय हो। संसार-समुद्रमें डूबते हुए मनुष्योंको पार उतारनेवाले जहाज़के समान, सिद्धि-वधूके स्वामी अजर, अमर, अचर, अभय, अरज, अपर-म्पर, परमेश्वर, परमयोगीश्वर, हे युगादिजिनेश्वर! मैं तुम्हें श्रद्धा-पूर्वक नमस्कार करता हूँ।"

इस प्रकार हर्षसे प्रफुल्लित चित्तके साथ मधुर भाषामें श्री जिनेश्वरकी स्तुति करनेके बाद वे अति सरल चित्तसे राजासे बोले,—"हे अनुपम राजाके कुलका पताके समान मृगध्वज राजा! आज भाग्यवश मेरे आश्रममें आकर तुम मेरे अतिथि हुए हो, इसलिये मैं बड़े आनन्दके साथ तुम्हारा उचित आतिथ्य-सत्कार करना चाहता हूँ; क्योंकि बड़े भाग्यसे ही तुम्हारे जैसे अतिथियोंका आगमन होता है।"

यह सुन, राजा मन-ही-मन सोचने लगे,—"ये महर्षि कौन हैं? ये क्यों इस प्रकार नम्रताके साथ मुझे अपने आश्रममें लिये जा रहे हैं? मेरा नाम-धाम इन्हें कैसे मालूम हो गया?" मन-ही-मन यही सब सोचते-विचारते हुए राजा [illegible] चित्तके साथ कुलपतिके पीछे-पीछे चलकर उनके आश्रममें आये। [illegible] उत्तम पुरुषोंसे विनयका अनुरोध टाला नहीं जाता।

[illegible] अपने आश्रममें बड़े आदरसे बिठाकर उन राजाके प्रति अर्पित कर इसने कहा,—"हे राजन्! तुम्हें यहाँ आकर

मुझे बड़ा कृतार्थ किया। अब तुम मेरे कुलके अलङ्कारके समान संसारके जीव-मात्रके नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मेरी प्राणोंसे भी अधिक प्यारी कमलमाला नामकी कन्याका पाणिग्रहण करो।"

"जो रोगीको भावे, वही वैद्य बतलावे," के अनुसार राजाने ऋषिकी यह प्रार्थना तुरत स्वीकार कर ली। तब ऋषिने अपनी परम रूपवती, युवती और गुणवती कन्या कमलमालाको बुला कर, उसका हाथ राजाको पकड़ा दिया। कहा है, कि शुभकार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये, इसोलिये विवाहकी यह मङ्गल-क्रिया भटपट सम्पन्न कर दी गयी।

राजा परम सुन्दरी ऋषि-कन्याको देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए। यह वल्कलके वस्त्र पहने हुई थी, तोभी बड़ी सुन्दरी मालूम पड़ती थी। कमलमालाके प्रति राजहंसकी प्रीति होना, तो ठीक ही है। उस समय हर्षसे भरे हुए हृदयके साथ तपस्वियोंने विवाहके सारे मङ्गलाचार किये और स्वयं गाङ्गिल ऋषिने अपने हाथों ब्याहको सब रस्में पूरी कीं। इस प्रकार राजाके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके बाद, ऋषिने कथन छुड़ाते समय उन्हें पुत्र-प्राप्तिके निमित्त एक मन्त्र बतलाया। मुनिके पास दहेज में देने योग्य और कौनसी चीज़ थी? विवाह-सम्बन्धी सब कार्य हो चुकनेपर राजाने ऋषिसे कहा,—"मुनिवर! मैं राज्य-का एकदम सूना छोड़कर बड़ी जल्दीसे यहाँ चला आया हूँ, इस लिये अब आप शीघ्रही मेरे यहाँसे प्रस्थान करनेका प्रबन्ध कर दीजिये।"

ऋषि,—"हम वनमें फिरनेवाले मुनियोंके पास रखाही क्या है, जो तुम्हारी विदाईके लिये विशेष तैयारी करेंगे! तुम्हारे इन राजसी वस्त्रों और अपने वल्कलके वस्त्रोंको देखकर मेरी पुत्री मन-ही-मन उदास हो रही है। इसके सिवा मेरी यह कन्या लड़कपनसे ही तपस्विनियोंकी तरह वृक्षोंका सिञ्चन ही करती रही है, इसलिये बड़ी ही भोली-भाली है। तथापि इसके चित्तमें तुम्हारे प्रति अगाध स्नेह भरा हुआ है, क्योंकि यह भली भाँति जानती है, कि स्त्रीके लिये स्वामी ही सब कुछ है। अतएव तुम ऐसा करना, जिसमें इसे अपनी सवतियोंके हाथों दुःख न उठाना पड़े।"

राजा,—"महर्षे! दुःखकी क्या बात है! मैं इसे ऐसे आदरसे रखूँगा, कि इसे कभी दुःख-दर्दका नाम भी मालूम नहीं होने पावेगा। अपने वचनोंकी रक्षा मैं सदैव करता रहूँगा।"

इस प्रकार प्रेमके साथ ऋषिके संग बातें करनेके बाद चतुर राजाने तपस्विनियोंकी ओर देखते हुए कहा,—"यहाँ तो पहलेसे पांच यज्ञोंका भी ह्रास है पर अपने नगरमें पहुँचकर मैं आपका पूर्वोक्त सभी मनोरथ पूरे कर दूँगा।"

यह सुनकर ऋषिको बड़ा खेद हुआ। उन्होंने उदासीके साथ कहा,—"राजन्! मुझे चिन्ता है, कि मैं [illegible] [illegible] पुत्रीके [illegible] यह [illegible] कहते कहते उनकी आँखोंसे आँसू [illegible] देखकर शकुन्तला रोने और [illegible]

पड़े, जैसे बादलोंसे पानीकी बूँदें टपकती हैं। यह देख, सबको बड़ा अचम्भा हुआ और वे लोग सोचने लगे, कि यह लड़की बड़ी ही सौभाग्यवती है।

आजतक फलवाले वृक्षोंसे फल और बादलोंसे पानी ही बरसते देखा था, पर आसमानसे वस्त्राभूषणोंका बरसना आजही देखनेमें आया! सच है, पुण्यके योगसे क्या नहीं हो जाता? पुण्यके बलसे बहुतसे आश्चर्यमें डालनेवाले काम हो जाते हैं। कहा भी है, कि—

> "पुण्यैः सम्भाव्यते पुंसामसम्भाव्यमपि क्षितौ।
> तेरुर्मेरुसमाः शैलाः किं न रामस्य वारिधौ॥"

अर्थात्—पुण्यके योगसे जगत् में अनहोनी बातें भी हो जाती हैं। क्या रामचन्द्रके लिये मेरुके समान बड़े-बड़े पर्वत भी समुद्रमें नहीं तर गये थे?"

इसके बाद राजा अत्यन्त हर्षित चित्तसे प्रदीप और अपनी पत्नीके साथ-साथ फिर उस मन्दिरके भीतर गये और प्रभुकी स्तुति करते हुए बोले —"हे प्रभो! मैं फिर परम उत्सुक होकर आपके दर्शन करने आया हूँ। या तो आपकी यह मूर्त्ति मेरे हृदयमें पत्थरपर खिंची हुई लकीरकी तरह अमिट भावसे अङ्कित हो गयी है।" यह कह जिनेश्वर भगवानके चरणोंमें नमस्कार कर, बाहर आकर राजाने ऋषिसे पूछा, "महात्मन्! अब कृपा कर आप मुझे यहाँसे जानेकी राह बतला दीजिये।"

ऋषिने कहा,—"रास्ते आदिकी बात मुझे नहीं मालूम।" राजाने कहा,—"तो फिर आपने मेरे नाम आदिका कैसे पता पा लिया था?"

ऋषि बोले,—"इसका हाल यों है, सुनो! एक दिन अपनी इस परम रूपवती कन्याको युवावस्थाको प्राप्त होते देख, मैं अपने मनमें विचार करने लगा, कि मैं इसे किस पुरुषको सौंपूँ, जो रूप, वयस और गुणोंमें ठीक इसीके समान हो? इसी समय सामने पेड़पर बैठा हुआ एक तोता बोला,—'मुनिजी महाराज! आप चिन्ता न करें, मैं आज ऋतुध्वज राजाके पुत्र मृगध्वज राजाको अभी इस मन्दिरमें बुलाये लाता हूँ। जैसे कल्प-लतिका कल्पवृक्षके ही योग्य होती है, वैसेही यह कन्या भी उन्हींके योग्य है। आप इसमें किसी तरहका सन्देह न कीजिये।' यह कह, वह तोता उड़ गया और उसके बाद तुम्हें यहाँ लेकर आया। उसीके कहे अनुसार मैंने उचित रीतिके अनुसार अपनी कन्याका विवाह तुम्हारे साथ कर दिया। इसके सिवा मुझे और कुछ भी नहीं मालूम।"

यह सुन राजा बड़ी चिन्तामें पड़ गये। इतनेमें मौका देख कर वह तोता बोल उठा,—"हे राजा! आप घबराये नहीं, मेरे पीछे-पीछे चले आयें, मैं आपका रास्ता दिखलाऊँगा। यद्यपि मैं पक्षी हूँ, तथापि मैं यह जानता हूँ, कि अपने आश्रममें रहने वाले—अपने आसरेमें रहनेवाले—मनुष्यकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि यदि कोई नीच पुरुष भी अपनी शरणमें आये,

तोभी उसे नहीं स्थान देना चाहिये , फिर आप तो बहुत बड़े आदमी हैं—आपके सम्बन्धमें तो कहनाही क्या है ? देखिये, चन्द्रमा अपनी गोदमें आ पड़नेवाले शशक-बालकको त्याग नहीं करता। आप आर्य-पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, इसलिये मुझ नीच पक्षीको कदापि भूल न जायेंगे। मैं भले क्षुद्र हूं, तोभी मैं आपको सदा याद रखूंगा।"

यह सुन, आश्चर्यमें डूबे हुए राजा, शुककी आज्ञा ले, उसीके साथही घोड़े पर सवार हुए और उस तोतेके बतलाये हुए रास्ते पर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। क्रमशः जब क्षितिप्रतिष्ठित नगर निकट आगया और दूरसे ही कुछ कुछ दिखाई देने लगा, तब एकाएक वह तोता एक वृक्षपर आकर चुपचाप बैठ गया। उसे इस तरह चुप्पी साधकर बैठते देख, राजाने स्नेहसे पुचकार बड़ी घबराहटके साथ पूछा,—"क्यों भाई! यद्यपि नगरके महलों और किलोंके ऊँचे ऊँचे शिखर दिखाई दे रहे हैं, तथापि अभी हम उससे बहुत दूर हैं। फिर तुम इस तरह डरे हुए आदमीकी तरह चुपचाप क्यों बैठ गये?"

[illegible]

[illegible]

ओह, उस दुष्ट चन्द्रशेखरको इतनी मजाल! उसके दिलमें ज़रा भी भय-शङ्का नहीं हुई! अपने स्वामीके राज्यको चौपट करा देनेवाली इस स्त्रीकी तृष्णा तो देखो। ओह, कैसा घोर अन्याय है! पर इसमें बेचारे चन्द्रशेखरका दोष ही क्या है? सूने राज्यको कौन नहीं अपने हाथमें कर लेना चाहता? बिना रखवालेके खेतको सूअर चरही जाते हैं। असलमें मैं ही अपराधी हूं, जो दूसरेके बहकावेमें पड़कर बिना सोचे-विचारे राज्यको छोड़कर चला गया। नीति भी तो कहती है, कि बिना विचारे जो करे सो पाछे पछिताय। मैंने उस स्त्रीका जो इतना प्यार किया उसपर इतना विश्वास किया, यह भी अविचारका ही कार्य था फिर मुझे विपत्ति क्यों नहीं झेलनी पड़ेगी? लोग कहा करते हैं कि मनुष्य यदि कोई काम करे, किसीपर विश्वास करे, किसीके धरोहर सौंपे, किसीको प्यार करे, किससीसे कुछ बोले, किसीको कुछ दे, या किसीसे कुछ ले, तो पहले अच्छी तरह उसके फलाफलका विचार कर ले। नहीं तो पीछे पछतानाही हाथ आता है। कहा भी है, कि

> सगुणमपगुणं वा कुर्वता कार्यजातम्।
> परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
> अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेः
> भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः॥

अ [illegible] नेके पहले, [illegible]
द्धिमान [illegible] विचार कर लेना

चाहिये, क्योंकि जो बिना सोचे-समझे सहसा कोई काम कर बैठता है, उसका परिणाम [illegible] सिद्ध होता है।"

इस प्रकार अपने राज्यका नाश उपस्थित देख, राजा मन-ही-मन पछताने और हाथ मलने लगे। यह देख, उन लोगोंने कहा,—"राजन्! अब व्यर्थ पछताने और हाथ मलनेसे क्या होगा? बीती हुई बातसे आपकी कोई भलाई नहीं हो सकती, बुद्धिमान् बीतकी [illegible] चिन्ता नहीं करते। इसलिये हे महाराज! आप यह न समझें, कि आप का राज्य आपके हाथसे चला ही जायेगा। अभी आपको बहुत [illegible]"

[illegible] कि इस [illegible] पूर्व [illegible] हो [illegible], कि उसका [illegible] न होगा। पर [illegible] नहीं था, कि [illegible]

[illegible]

तरह चुपचाप खड़े रह गये। इसी समय उन्होंने बड़े विस्मयके साथ देखा, कि चारों ओरसे बहुतसे सैनिकोंने उन्हें घेर लिया और "महाराज! आपकी जय हो—ईश्वर आपको दीर्घजीवी बनाये। कहिये, सेवकोंको क्या आज्ञा होती है? आज बड़े भाग्यसे हमने आपके दर्शन पाये हैं। कृपा कर अपने पुत्रके समान हम सैनिकोंको शीघ्र आज्ञा दें, हम आपके लिये प्राण समर्पण करनेको तैयार हैं—"ऐसा कहते हुए उनके चरणोंमें सिर झुका दिया। वे सैनिक शत्रुओंके नहीं, बल्कि राजा मृगध्वजके अपनेही सैनिक थे। इसी लिये एकही साथ हर्ष और विस्मयमें पड़कर राजाने उन सैनिकोंसे पूछा,—"तुम लोग यहाँ कैसे चले आये?"

सैनिकोंने कहा,—"हमने दूरसे ही आपको यहाँ आया हुआ देख लिया; पर हम इतनी जल्दी यहाँतक कैसे चले आये, यह हमें नहीं मालूम। महाराज! पुण्य योगसेही यह अद्भुत घटना हुई है।"

इस प्रकारकी अद्भुत बात सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे अपने मन ही मन विचार करने लगे 'आह, उस बालेकी बात तो [illegible] इसमें मेरी [illegible] नाहीं [illegible] सुभसे [illegible] कि मनुष्य [illegible]

आये राजाने सब हाल पूछा, तब रानीने उन्हें उस शुककी सारी कहानी कह सुनायी। उसे सुनकर वे बड़े आश्चर्यमें पड़कर कहने लगे,—"राजन्! आप धैर्य रखें, शीघ्र ही वह शुक फिर आपसे आ मिलेगा, क्योंकि जो किसीकी भलाई चाहनेवाला होता है, वह उसे कभी भूलता नहीं है। किसी ज्ञानी पुरुषके पूछनेपर इन सारे भेदोंका भण्डाफोड़ हो ही जायेगा, क्योंकि ज्ञानियोंसे कुछ छिपा हुआ नहीं रहता। अब इस समय तो आप इन सब चिन्ताओंको चित्तसे दूर कर नगरमें पधारें और उसे अपने चरणोंसे पवित्र करें। सदा आपके दर्शनोंके लिये उत्सुक रहनेवाले नगर-निवासियोंको दर्शन देकर आनन्दित कीजिये।"

इनकी इस बातको उचित समझकर राजाने उनकी बात मान ली, क्योंकि उचित बात माननी ही पड़ती है।

इसके बाद तरह-तरहके बाजे बजाते हुए दूसरे दिन राजाको ... नगरमें आ पहुंचे। उन्हें आते देख, ... [illegible]

यहाँ चला आया था ; पर आपके अज्ञानी सैनिकोंने मेरा मतलब न समझकर मुझे शत्रु जान, मेरे साथ युद्ध करना आरम्भ कर दिया। इस युद्धमें मुझे बड़ी हानि उठानी पड़ी। कहाँ तो मैं भलाई करने आया और स्वयं ही बुरा बनकर मार खायी। ऐसे सेवक भला किस कामके, जिनके मन स्वामीके साथ मिले हुए न हों ! नीतिज्ञोंने कहा है, कि "यदि पिताके कार्यमें पुत्र, गुरुके कार्यमें शिष्य, स्वामीके कार्यमें सेवक और पतिके कार्यमें पत्नी अपने प्राण भी दे दे, तोभी उचितही है।"

भाटके मुँहसे यह बातें सुन, सन्देहके बहुतसे कारण मौजूद रहते हुए भी, राजाने अपनी उदारताके कारण उसकी बातोंको सच ही मान लिया और चन्द्रशेखरके सामने आनेपर उसका उचित आदर किया। यह देख, सब लोग राजाकी बुद्धिमत्ता, उदारता और गम्भीरताकी भूरि-भूरि मुँहसे बड़ाई करने लगे। इन-के बाद जैसे लक्ष्मीके साथ कृष्ण चलते हैं, वैसेही राजा मृगध्वज भी अपनी रानी कमलमालाके साथ बड़ी धूमधामसे नगरमें आये। उस समय नगर निवासियोंने जय-जयकार और गम्भीर ध्वनि करते हुए [illegible]

दूसरा परिच्छेद

रण-भूमिमें जय प्राप्त करनेमें जैसे राजाही मुख्य हेतु होता है और सैनिक आदि केवल सहायक होते हैं, वैसे ही पुत्र-प्राप्तिमें धर्मही मुख्य कारण होता है और मन्त्र आदि केवल उसके सहायक होते हैं। यही सोचकर राजाने एक दिन पुत्र प्राप्तिके निमित्त शान्तिक ऋषिके बतलाये हुए मन्त्रका विधि-पूर्वक जाप करना आरम्भ किया। उस मन्त्रके प्रभावसे राजाकी सातो रानियोंके एक-एक पुत्र हुआ। कहते हैं, कि कारणसेही कार्यकी उत्पत्ति होती है। इसीसे यद्यपि राजाने अपनी [illegible] कारण रानी [illegible]का मान नहीं घटाया था [illegible] कारण रानी [illegible] नहीं [illegible]

एक दिन [illegible] एक बड़ी ही [illegible] और [illegible] कहा [illegible] [illegible] कि [illegible] रामचारि[illegible]

रानी कमलमालाने गर्भको धारण किया। क्रमशः वह गर्भ रानीकी सभी इच्छाओंकी तत्काल पूर्ति करनेमें राजाकी तत्परताके कारण, उसी प्रकार बढ़ने लगा, जैसे उत्तम रसके द्वारा सिञ्चन करनेसे कल्पवृक्षका अङ्कुर धीरे-धीरे वृद्धिको प्राप्त होता है। इसी तरह नौ महीने बीत जानेपर दसवें महीनेमें रानीने ठीक उसी तरह एक शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्रको जन्म दिया, जैसे पूर्व-दिशा पूर्णिमाके चन्द्रमाको जन्म देती है। पटरानीके पुत्र हुआ, यह जानकर राजाने अन्य रानियोंके पुत्र-जन्मके समयसे अधिक धूमधामके साथ उत्सव किये, क्योंकि राजाओंकी यह रीति है, वे पटरानियोंको सब रानियोंसे अधिक मान देते हैं।

पुत्र-जन्मके तीसरे दिन सूर्य-चन्द्र-दर्शनका संस्कार बड़ी धूमधामके साथ किया गया। छठे दिन षष्ठिजागरण नामक उत्सव हुआ। इन उत्सवोंकी तैयारी देख देख कर राजा फूले अङ्ग नहीं समाते थे। बारहवें दिन राजाने बड़े उत्सव, उत्साह और उल्लासके साथ पुत्रका नामकरण किया और स्वप्नके अनुसार ही उसका नाम शुकराज रखा।

क्रमशः वह बालक बढ़ने लगा [illegible] देखते देखते पाँच वर्षका [illegible] [illegible] [illegible] इसमें आमका पेड़ फल देने लगता [illegible] [illegible] सबका सुखी [illegible] [illegible] [illegible] वृद्ध प्रयत्नको [illegible] [illegible] [illegible] एक-एक करके सभ [illegible] [illegible] [illegible] चतुरता

[illegible]

एक दिन [illegible]

[illegible]

अनेक प्रकारके उपचार करनेके बाद राजकुमारको थोड़ा-बहुत होश हुआ और उसने आँखें खोल दीं, पर सूखे हुए चेहरेपर पहलेकी सी प्रसन्नता नहीं दिखाई दी। उसने चौंककर चारों ओर देखना तो शुरू कर दिया, पर लाख चेष्टा करनेपर भी उसके मुँहसे बोली नहीं निकली। जैसे छद्मस्थ अवस्थामें तीर्थङ्कर मौन रहते हैं, वैसेही कुमार भी मौन [illegible]र यह देख, राज-दम्पतीको बड़ी घबराहट हुई। उन्होंने सोचा,—"दैवयोगसे पुत्रकी मूर्च्छा तो टूट गयी, पर इसका मुँह क्यों बन्द है? बोली क्यों नहीं निकलती? यह अवश्यही हमलोगोंका बड़ा भारी दुर्भाग्य है।" यही सोचते हुए वे लोग उस लड़केको लिये हुए नगरमें चले आये।

इसके बाद राजाने पुत्रका कण्ठ खुलवानेकी बड़ी-बड़ी तरकीबें कीं, पर वे सब ठीक उसी तरह बेकार गयीं, जैसे दुर्जनपर किया हुआ उपकार कभी सफल नहीं होता। इसी तरह एक-दो दिन नहीं, छः महीनेका समय निकल गया। इस अर्सेके बीचमें न तो यही मालूम हुआ, कि उसे एकाएक क्या हो गया है और न वह एक शब्द बोला ही। राजकुमारको इस कठिन बीमारीका कोई कारण नहीं मालूम पड़ा। सब लोग यही कहने लगे, कि विधाताके करतब भी कुछ अजीब ढंगके होते हैं—वह प्रत्येक रत्नमें ही कोई न कोई दूषण लगा देता है। उसने अंश चन्द्रमामें कलङ्क लगाया, सूर्यमें बहुत गरमी पैदा कर दी, आकाशको शून्य बनाया, पवनको चञ्चल कर दिया, मणिको पत्थरोंकी

गिनतीमें रखा, कल्पवृक्षको जड़ बनाया, पृथ्वीमें धूल भर दी, समुद्रको खारी बनाया, बादलोंका रङ्ग काला कर दिया, अग्निको सब कुछ जलानेवाला बनाया, पानीको हरदम नीचेकी ही ओर जानेवाली चीज़ बनाया, मेरुको कठोर कर दिया, सुगन्धित कपूरको तुरत उड़ जानेवाला बनाया, कस्तूरी काली-कलूटी बनायी, विद्वान्‌को निर्धन बनाया, धनवानोंको मूर्ख कर रखा और राजाओंको लोभी बना दिया, उसी तरह उसने हमारे राजाको ऐसा सुन्दर पुत्र देकर भी इसे गूँगा कर दिया। इसे विधाताकी विचित्र विधि नहीं, तो और क्या कहें? इसी तरहकी बातें कह-कहकर लोग तरस खाने और राजाके साथ सहानुभूति दिखलाने लगे। सच है, बड़े आदमियोंका दुःख देखकर सबकी छाती फटने लगती है!

उठे और बोले,—"अहा! यह मुनिकी कैसी अपूर्व महिमा है, कि यह बालक, जो एक मुद्दतसे गूँगा हो रहा था, बिना किसी मन्त्र-तन्त्र या टोने-टटकेके, एकाएक बोल उठा।"

सबके चुप हो जानेपर राजाने पूछा,—"मुनिवर! यह आश्चर्य-लीला कैसी है, कृपा कर मुझे समझाकर मेरा सन्देह दूर कीजिये।"

यह सुन, केवलज्ञानी मुनिने कहा,—"हे राजन्! अब मैं तुम्हें कुछ पूर्व-भवकी बातें बतलाता हूँ। इन्हें ध्यान देकर सुनो—

"किसी ज़मानेमें मलयदेशमें भद्दिलपुर नामका एक नगर था। उस नगरमें बड़े ही विचित्र चारित्रवाले जितारि नामके राजा रहते थे। इन्होंने जिस प्रकार एक ओर अपने द्वारपर आनेवाले सभी याचकोंको मुँहमाँगा दान देकर निहाल कर दिया था, वैसेही दूसरी ओर अपने सम्मुख आनेवाले सभी शत्रुओंको पराजितकर उन्हें क़ैद कर लिया था। चतुरता, उदारता और शूरता आदि गुणोंसे सुशोभित वे राजा एक दिन अपने दरबारमें बैठे हुए थे। इसी समय द्वारपालने आकर कहा,—"महाराज! विजयदेव राजाका पवित्र हृदयवाला दूत आया है और महाराजके दर्शन करना चाहता है। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं उसे बुला लाऊं।" राजाने झटपट आज्ञा दे दी। आज्ञा पाते ही वह दूत दरबारमें आ पहुंचा। राजाने उससे यहाँ आनेका कारण पूछा। तब उस सत्पुरुषने मुस्कुराते हुए हाथ जोड़कर कहा,—"महाराज! साक्षात्

तरह समय बीतता चला गया—हंसी जवानीकी सबसे ऊंची सीढ़ीपर पहुंच गयी। इधर क्रमसे सारसी भी युवती हो चली। तब दोनोंने एक दिन आपसमें यह प्रतिज्ञा कर डाली, कि हम दोनों एकही पुरुषके साथ विवाह करें, जिसमें हमारा कभी वियोग नहीं हो। जब उन दोनोंकी इस प्रतिज्ञाकी बात राजाने सुनी, तब उन्होंने उन दोनोंके लिये स्वयंवर रचाया। स्वयंवरका मण्डप तैयार हो गया है। उसमें बड़े ही सुन्दर-सुन्दर मञ्च राजा राजकुमारोंके बैठनेके लिये तैयार किये गये हैं। अन्न-धन और सामग्रीके इतने ढेर राजाने इकट्ठे कर रखे हैं, कि वे छोटे-मोटे पहाड़ोंके समान दिखाई दे रहे हैं। अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, आन्ध्र, जालन्धर, मरुस्थल, लाट, भोट, महाभोट, मेदपाट, विराट, गौड़, चौड़, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, कुरु, गुर्जर, आभीर, कीर, काश्मीर, गोल, पाञ्चाल, मालव, हूण, चीन, महाचीन, कच्छ, कर्णाटक, कुङ्कण, नेपाल, कान्यकुब्ज, कुन्तल, मगध, सिन्धु, विदर्भ, द्राविड़ आदि अनेक देशोंके राजाओं और राजकुमारोंको आमन्त्रित किया गया है। इसी लिये, हे मगध-नरेश! मैं आपको बुलाने आया हूं [illegible]

[illegible]

न्योछावर हो गये। ये दोनों राजकुमारियाँ आकर खड़ी ही हु[ई] थीं, कि उनकी सखियाँ एक-एक करके सब राजाओंका परिच[य] देने लगीं। उन्होंने कहा,—"बहनो! यह देखो, यह सब राज[ाओं]के आदि राजा राजगृहके नरेश हैं। यह शत्रुओंके सुख-सौभाग्य-का ध्वंस करनेवाले परम नीति-कुशल कौशल-देशके राजा हैं। अपनी शोभासे सारे स्वयंवर मण्डपकी शोभा बढ़ानेवाले य[ह] गुर्जर-देशाधिपतिके चिरंजीव कुमार हैं। जलधिको शक्तिसे ग[illegible] लज्जित करनेवाले यह सिन्धु-नरेशके पुत्र हैं। शान्ता और उद[ार] वृत्ता-रूपिणी लक्ष्मीके संग रमण करनेकी रंग भूमिके समान य[ह] अङ्ग देशके अधिपति हैं। इच्छित भुक्तियोंका आलिङ्गन करनेवा[ले] यह कलिङ्गदेशके राजा हैं। अपने रूपसे सामने कामदेवको भी लज्जि[त] करनेवाले यह वङ्गदेशके राजा हैं। बेशुमार दौलतके मालिक य[ह] मालवाके महाराज हैं। प्रजाका पालन करनेवाले धर्म[illegible] परम कृपालु पञ्चालके भूपाल हैं। भारतके सबसे अच्छे गुणों-से युक्त यह कुरु देशके राजा हैं। शत्रुओंकी स्त्रियोंको शोका-कुल करनेवाले यह [illegible] देशके राजा हैं। यशकी सुगन्धि[illegible] [illegible] समान यह [illegible] देशके राजा हैं।"

[illegible]

द्वेष करने लगीं। शास्त्रकारोंने सच कहा है, कि एक ही चीज़के दो चाहनेवालोंमें प्रेम नहीं रह सकता।

"हंसी स्वभावसे ही बड़ी सरल थी, परन्तु सारसीकी प्रकृति बड़ी मायाविनी थी। वह कभी-कभी बड़े नख़रे दिखलाती और राजाका मन मोह लेती थी। परन्तु इस प्रकार कपट करनेके कारण उसने दृढ़ स्त्री-कर्म उपार्जन किया। हंसी राजाको कम प्यारी थी, परन्तु अपने सरल स्वभावके कारण उसने स्त्री-वेदना-कर्म-दलका शिथिल कर दिया। प्राणियोंकी यह कितनी बड़ी मूर्खता है, कि वे स्वयं ही माया और कपट का जाल फैलाते तथा अपनी आत्माको दूसरे भवमें नीचे जानेको मजबूर करते हैं।

"एक दिन राजा अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ खिड़कीपर बैठे हुए थे। इसी समय उन्होंने रास्तेमें जाते हुए कुछ विदेशी मनुष्योंका एक झुंड देखा। यह देख, राजाने अपने नौकरोंसे पूछा, कि ये लोग कौन हैं? यह सुन, सेवकोंने कहा, कि महाराज! शंखपुर नामक नगरसे आया हुआ योगिसंघ है और विमलाचल नामक महातीर्थकी यात्रा करने जा रहा है। यह सुन [illegible] हुए और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] यह सुन [illegible] [illegible] कर [illegible] [illegible] दिया

धर्मसे सभी इष्ट वस्तुएं प्राप्त होती हैं—सभी साधनाओंकी सिद्धि होती है, इसलिये इस जगत्‌में धर्म ही एक सारभूत है। इसी तरह जगत्‌में जितने धर्म हैं, सबमें आर्हत्‌का धर्म (जैनधर्म) मुख्य है और इसमें भी सम्यक्‌दर्शन श्रेष्ठ है, क्योंकि जबतक सम्यक्‌दर्शन नहीं प्राप्त होता, तबतक सभी जप-नियम व्यर्थ ही हो जाते हैं। यह सम्यक्‌दर्शन देव, गुरु और धर्म—इन तीन तत्त्वोंकी श्रद्धासे प्राप्त होता है। इनमें भी जिनेश्वर मुख्य हैं। वह जिनेश्वरोंमें प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव-स्वामीका यह तीर्थ है, इसलिये इसकी इतनी महिमा गायी जाती है। यह सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। भिन्न-भिन्न गुणों और महिमाओंके कारण इस तीर्थके भिन्न-भिन्न नाम हैं। सिद्धक्षेत्र, तीर्थराज, मरुदेव, भगीरथ, विमलाचल, बाहुबली, सहस्रकमल, तालध्वज, कदम्ब, शतपत्र, नगाधिराज, अष्टोत्तर, शतकूट, सहस्रपत्र, ढंक, लौहित्य, कपर्दिनिवास, सिद्धिशेखर, पुण्डरीक, मुक्तिनिलय, सिद्धिपर्वत और शत्रुञ्जय आदि इक्कीस [illegible] नाम इस [illegible] जाते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

तीर्थङ्करोंका इस तीर्थमें आगमन हो चुका है और अभी नेमिनाथ भगवान्‌के अतिरिक्त शेष उन्नीस तीर्थङ्करोंका यहाँ आगमन होनेवाला है। अनन्त जीव उस तीर्थमें सिद्धि-पदको प्राप्त कर चुके हैं और अभी अनन्त जीव भविष्यत्‌में यहाँ सिद्धि-पद प्राप्त करेंगे। इसी लिये इस तीर्थको सिद्धक्षेत्र कहा जाता है। महाविदेहमें विचरण करनेवाले, विश्व-वन्दनीय तीर्थङ्करोंने भी इस तीर्थकी प्रतिष्ठा की है। बड़े बड़े भव्य प्राणी निरन्तर इसके नामकी माला जपते हैं। जैसे अच्छी तरह जोते हुए खेतमें बोया हुआ बीज अन्न उपजाता है, वैसे ही इस तीर्थमें यात्रा, स्नान, पूजन, तप और दान आदि सत्कर्म करनेसे बहुत ही अच्छा फल प्राप्त होता है। कहते हैं, कि इस तरहका ध्यान करनेसे हज़ार पल्योपमका,* इस तीर्थमें जानेका निर्णय करनेसे लाख पल्योपमका और तीर्थकी राहमें आजानेसे एक सागरोपमका† पातक नष्ट हो जाता है। शत्रुञ्जय-पर्वत के ऊपर जाकर श्रीजिनेश्वर भगवान्‌का दर्शन करनेसे नरक और तिर्यञ्च—इन दोनों गतियोंको प्राप्त होनेका भय दूर हो जाता है। यहाँ पूजा और स्नान विधान करनेसे हज़ारों सागरोपमके उपार्जित दुष्कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस पुण्डरीक पर्वतकी ओर एक एक पग चलनेसे मनुष्यके करोड़ों जन्मोंके पाप कट जाते हैं। शुद्ध बुद्धिमान मनुष्य

* असंख्य वर्षोंका एक पल्योपम होता है।

† दस कोटाकोटी पल्योपमका एक "सागरोपम" होता है।

[illegible]

[illegible]

पाँच उपवासका फल पावे, "आम्बिल"* करे, तो पन्द्रह उपवास का फल पावे, और उपवास करे, तो मास-क्षमणका† फल पावे। शत्रुंजय—तीर्थ में पूजा और स्नान करनेसे जितना फल मिलता है, उतना दूसरे तीर्थों में सुवर्ण, भूमि तथा भूषणोंका दान करनेसे भी नहीं मिल सकता। इस पर्वत पर धूप जलानेसे पन्द्रह उपवासका फल प्राप्त होता है, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों का धूप-दीप करनेसे मास-क्षमणका फल प्राप्त होता है और साधुओंका सत्कार करनेसे तो ऐसे ऐसे कितने ही मास-क्षमणोंका फल प्राप्त होता है। जैसे बहुतसे जलाशय होते हुए भी समुद्र को ही नीरनिधि कहते हैं, वैसे ही सब तीर्थों में यह महातीर्थ है। जिस प्राणीने इस तीर्थकी यात्रा करके अपने अर्थको सार्थक नहीं किया, उसका जीवन, जन्म, द्रव्य और कुटुम्ब—सब कुछ बेकार ही समझना चाहिये। जिसने इस तीर्थकी वन्दना नहीं की, उसका इस संसार में आना और न आना एक ही सा हुआ। उसका जीना मरना बराबर है। वह पण्डित हो, तो भी मूर्खके समान है। यदि दान, शील, तप और अन्यान्य कठिन क्रियायें दुष्कर हैं, तो बड़े सुखसे होने योग्य इस तीर्थकी वन्दना क्यों न करें? इसी तरह उपदेश प्राणियोंको इसकी सुखसे करना चाहिये। जिसने इस शत्रुंजय की यात्रा [illegible]

* [illegible]

† [illegible]

तक अन्न-जल भी न ग्रहण करूँ, ऐसा सङ्कल्प ले कर बैठे। रानी और सामन्तोंने जब यह हाल सुना, तब उन्होंने भी इसी तरहका उत्साह और आग्रह प्रकट किया। देखादेखी अनेक पुरजनोंको उस तीर्थकी यात्रा करनेका उत्साह हो आया और सब लोगोंने वहाँ जानेका पूरा सङ्कल्प कर लिया। कहा है, कि यथा राजा तथा प्रजा।

परन्तु राजा या अन्य लोगोंने बिना कुछ सोचे-विचारे ऐसा सङ्कल्प कर लिया। अब इनका क्या हाल होगा! इन्होंने यह भी नहीं सोचा, कि हमें जहाँ जाना है, वह स्थान यहाँसे कितनी दूर है और ऐसा कठिन प्रण करके हम वहाँतक कैसे पहुँच सकते हैं! यह तो बड़े भारी साहसकी बात है। यह तो प्रण नहीं-प्राण देनेका उपाय है। यही सब सोच-विचार कर, मन्त्री लोग राजाको बार-बार समझाने लगे, कि महाराज! ऐसी अनहोनी बातका मनसूबा छोड़ दीजिये। गुरु महाराजने भी कहा, कि महाराज! ऐसा दुस्साहस न करें। बहुत सोच-विचार कर प्रतिज्ञा करें; क्योंकि बिना विचारे काम करनेसे उसका फल उलटा होता है,—फिर जन्मभरके लिये पछतावाही हाथ रहता है।

यह सुन राजाने बड़े उत्साहके साथ कहा,—"स्वामिन्! अब तो मैं अभिग्रह (सङ्कल्प) धारण कर चुका। अब तो सोचना-विचारना व्यर्थ है। किवाड़के हाथका पानी पी लेनेके बाद उसकी जात पाँत किस लिये पूछना? हजामत बनवा लेनेके बाद दिन वार और तिथि नक्षत्रकी बात पूछनेसे क्या लाभ

महाराज ! यदि देवता और गुरुकी दया रहेगा, तो मैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

चौथा परिच्छेद

राजा इस प्रकार फुर्तीके साथ तीर्थ-यात्राके लिये रवाना हो गये, मानों वे कर्म-रूपी शत्रुओंपर चढ़ाई करने जा रहे हों। जाते-जाते कुछ दिनों बाद वे काश्मीर-देशके एक जङ्गलमें आ पहुँचे। उस समय भूख-प्यास और पैदल यात्रा करनेके कारण राह चलनेकी थकावटसे राजा और रानीके सूखे हुए चेहरेको देख, चिन्तासे व्याकुल होकर, सिंह नामक मंत्रीने गुरु महाराजके पास आकर कहा,—"महाराज! आप किसी तरह महाराजको समझाइये, नहीं तो धर्मके स्थानमें जैन-शासनकी अवहेलना ही होगी। उसी समय सूरीश्वरने राजाके पास आकर कहा,—"राजन्! तुम लाभालाभका विचार क्यों नहीं करते? कहते हैं, कि—

> सहसाविहित कार्यं न प्रायेण प्रमाणयत ।
> आगाराः सहसाकारास्य. सवत्र हि स्मृता. ।।'

अर्थात्—प्रिय सहसा कि[illegible] हु[illegible] का[illegible] सिद्ध न[illegible] होते; क्योंकि सहसाकारी [illegible] आपदा[illegible] हो[illegible] [illegible] हैं, इस-लिये तुम सहसा [illegible] [illegible] करो, [illegible] सुख [illegible]।

शरीरसे थके हुए, पर मनसे दृढ़चित्तवाले राजाने कहा,—"महाराज! आप यह उपदेश किसी कमज़ोर आदमीको देते, तो अच्छा था। मैं तो अपनी की हुई प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेकी सामर्थ्य रखता हूँ। प्राण भलेही चले जायें, पर मेरी प्रतिज्ञा नहीं झूठ हो सकती।"

राजाके इन ओजस्वी वचनोंको सुनकर उनकी हंसी और तानोंसे मानो दोनों स्त्रियाँ भी यहां आ पहुंचीं और बड़ा जोश दिखलाती हुई अपने स्वामीकी प्रतिज्ञाके पालनमें अपना प्राण दे देनेको भी उद्यत दिखलाने लगीं। प्रतिज्ञा-पालनके सम्बन्धमें उनका ऐसा उत्साह देखकर सब लोग उनके धर्म-प्रेम, एक-निष्ठा, दृढ़ता और अटूट-दृढ़ताकी सौ-सौ मुँहसे प्रशंसा करने लगे। जिसे देखो, वह यही कह रहा है, कि धन्य! यह तो साक्षात् धर्मका देवता दिखलाई दे रहा है—इस त्रिलोकीकी [illegible] तो देखो! देखो-देखो-देखो इसे, कहकर लोग राजा और रानीको आशीर्वाद देने लगे।

इसके बाद [illegible] इसी समयमें वहां कुछ [illegible]

एक पहर बीतते-न-बीतते तुम लोग उस तीर्थके दर्शन कर सकोगे यहाँ पहुँच, श्रीजिनेश्वर भगवान्‌को वन्दना कर, तुम लोग अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकोगे।" यह सुन मन्त्रीने कहा,—"देव! आप सबको ऐसा ही सपना दिखायें, जिसमें सब लोग इस बातको मानलें।"

हुआ भी ऐसा ही। यक्षने सबको इसी तरहका स्वप्न दिखाया। इसके बाद उसने उसी जंगलमें एक पर्वतके ऊपर विमलाचल-तीर्थके समान एक नया तीर्थ बना डाला। देवता क्या नहीं कर सकते? देवता जो कुछ वैक्रिय कार्य करते हैं, वह अधिकसे अधिक पन्द्रह दिनोंतक रहता है, पर उनका बनाया हुआ काम बहुत दिनोंतक रह जाता है। जैसे इन्द्रकी बनायी हुई नेमिनाथ भगवान्‌की मूर्ति रैवताचल पर्वतके ऊपर बहुत दिनोंतक ज्योंकी त्यों रह गयी थी।

सवेरे ही उठकर सब लोग एक दूसरेसे रातके स्वप्नका हाल सुनाने लगे। इसी तरहकी बातें करते हुए वे लोग आगे बढ़े। इसके बाद ही देवताके बतलाये अनुसार तीर्थके दर्शन कर उन लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ जिनेश्वर महाराजकी वन्दना और पूजाकर सब लोगोंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। सबके शरीर-में आनन्दके मारे पुलकावली छा गयी और पुण्यके अमृतसे सबकी आत्मा परिपूर्ण हो गयी। अनन्तर स्नान-मज्जन, माल्योद्घाटन आदि किया करनेके बाद वे लोग वहाँसे घर लौटनेको तैयार हुए। राजा भी तीर्थके गुणोंके ज्ञानसे मुग्ध हुएके

समान उसी संघके साथ साथ चल पड़े। परन्तु फिर थोड़े ही दिनमें तीर्थकी वन्दना करनेके लिये वहीं लौट आये। कहनेका मतलब यह, कि वहां से लौट आनेपर भी उनका मन नहीं माना और वे फिर वहीं चले आये। इसी तरह अपनी आत्माको नाना प्रकारकी नरक-गतिसे बचानेके लिये राजा सात सात बार वहीं फिर-फिर कर आये।

यह देख मन्त्रीने पूछा,—"महाराज! यह क्या मामला है!"

राजाने कहा,—"जैसे बालक अपनी मांको छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता, वैसेही मुझसे भी यह तीर्थ छोड़ते नहीं बनता। इसलिये मन्त्री! मेरी तो इच्छा है, कि तुम मेरे लिये यहीं एक नगर बसाओ। मैं तो अब यहीं रहूँगा; क्योंकि जैसे हाथमें आया हुआ खज़ाना कोई हाथसे निकलने देना नहीं चाहता, वैसे ही मैं भी इस प्रिय स्थानको छोड़ना नहीं चाहता।"

राजाकी यह आज्ञा पाकर, मन्त्रीने तुरतही उस स्थानपर एक नगर निर्माण करना आरम्भ किया; क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्य अपने स्वामीकी उचित आज्ञाका पालन करनेमें कभी विलम्ब नहीं करते। राजाने उस नगरमें जाकर बसनेवालोंका कर माफ़ कर दिया। इसका लोभसे और तीर्थके दर्शनके ... प्रेरित होकर उस देशके बहुतसे मनुष्य भी ... बस गये। ... नगरमें रहनेवाले मनुष्योंके ... विमल ... इसी लिये ... नाम विमलपुर रख गया। कहते हैं कि आज ... जिस नामसे बसा हो गया था वही ... है

नगर बस जानेपर श्रीजिनेश्वरके ध्यानमें मन लगाये हुए राजा जितारि वहींपर बड़े आनन्दसे समय व्यतीत करने लगे। कुछ दिन इसी प्रकार बड़े सुखसे बीत गये।

उस नगरमें जो जिन-मन्दिर था, उसके सुनहले कलशपर प्रतिदिन एक मीठी बोली बोलनेवाला तोता आकर बैठा करता था। धीरे-धीरे राजाके मनको उसने आकर्षित कर लिया—राजा उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता अनुभव करने लगे। उस प्रासाद-पर आकर बैठनेवाले तोतेपर राजाका मन ऐसा मोहित हो गया, कि वे अर्हंतका ध्यान भूलनेसे लगे।

इसी तरह बहुत दिनोंके बाद राजाने अपना अन्तसमय आया देखकर श्री ऋषभदेव स्वामीके पास आकर अनशन करना आरम्भ किया; क्योंकि धर्मात्माओंकी यही रीति है। उनकी दोनों धीर-नारियोंने भी अन्तसमयमें राजाकी मतिको धर्ममें स्थिर रखनेके लिये नियांमणा० और नमस्कार मन्त्रका जाप करना आरम्भ किया। सच कहा है, कि बुद्धिमान् मनुष्य समयानुसार बर्ताव करनेवाले होते हैं। इसी समय उस मन्दिरपर वही तोता आ बैठा और बड़े मीठे स्वरसे बोलने लगा। दैवयोगसे राजाका ध्यान उसकी ओर चला गया। ज्यों ही उनका ध्यान उस तोतेकी तरफ गया, त्योंही उनको देह छूट गयी और इसी लिये उनकी आत्मा शुक-योनिमें उत्पन्न हुई। [illegible] कोई अपना [illegible] नहीं छोड़ सकता,

० [illegible] [illegible] [illegible] है

श्रीजिनेश्वर भगवान्‌के सम्यक्त्वका बहुत बड़ा माहात्म्य है।

इसके बाद राजाकी प्रेतक्रिया समाप्त कर हंसी और सारसीने प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली और अन्तकालमें मृत्युके बाद प्रथम देवलोकमें जाकर देवियाँ हुई। उन्होंने अवधिज्ञानके द्वारा यह मालूम करलिया, कि उनके स्वामीका जीव इस समय कहाँ है। जब उन्हें यह मालूम हुआ, कि वे तो शुक-योनिमें हैं, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे झटपट अपने स्वामीके पास आ पहुँची और उनसे पूर्वजन्मका हाल बतलाते हुए उन्हें प्रतिबोध देकर उसी तीर्थमें उनसे अनशन कराया। इस बार वे मरकर उन्हीं दोनों देवियोंके स्वामी देव हुए। कालक्रमसे समय पूरा होनेपर पहले वे दोनों देवियाँ ही देवलोकसे च्युत हुई। उस समय उस देवने केवली महाराजसे पूछा,—"भगवन्! मैं सुलभ-बोधि हूँ या दुर्लभबोधि?" मुनिने कहा,—"तुम सुलभबोधि हो।" यह सुन, देवने कहा,—"स्वामिन्! यह क्योंकर हो सकता है? कृपाकर बतलाइये।" यह सुन, केवली महाराजने कहा,—

"तुम्हारी दोनों देवियोंमेंसे जो पहले च्युत हुई है, हंसी नामक रानीका जीव क्षितिप्रतिष्ठित नगरके राजा ऋतुध्वजका पुत्र मृगध्वज नामक राजा हुआ है और सारसीका जीव पूर्वमें किये हुए कपटके कारण काश्मीर देशके भीतर विमलाचलके निकटवाले आश्रममें गांगिलमुनिकी पुत्री कमलमालाके रूपमें अवतीर्ण हुआ है। इन्हीं दोनोंके संयोगसे तुम इनके घर पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण करोगे और तुम्हारा [illegible] नाम रहेगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्रीदत्तकेवलीने राजा मृगध्वजसे कहा, "हे राजन्! उसी जितारि राजाके जीवने, तोतेका रूप बनाकर उस दिन तुम्हें उस आमके पेड़पर दर्शन दिया था। वही उस दिन मीठी बोली बोलकर तुम्हें उस आश्रममें ले गया, उसीने विवाहके बाद कन्याके लिये विविध प्रकारके अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण दिये, तुम्हें रास्ता दिखलाते हुए पीछे लौटा लाया और तुम्हारे सैनिकोंसे तुम्हारा मिलाप करा दिया। इसके बाद वह देवलोकमें चला गया। आयु पूर्ण होनेपर देवलोकसे च्युत हो, वही तुम्हारा शुक नामका यह पुत्र हुआ है। तुम इसे उसी आम्रवृक्षके नीचे ले आये, इसीसे इसे जातिस्मरण हो आया और यह सोचने लगा, कि यह तो बड़ी विचित्र लीला हुई। पूर्वजन्म में जो दोनों मेरी स्त्रियाँ थीं, वेही इस समय मेरे माता-पिता हैं। इन्हें माता-पिता कहकर पुकारनेकी अपेक्षा तो मौन रहनाही अच्छा है। यही सोचकर यह बालक मौन हो रहा है। यह कोई रोगी नहीं था, बल्कि इसने जानबूझकर मौन अवलम्बन कर लिया था, इसीसे तुम्हारा कोई उपाय काम न आया और यह गूंगा बना रहा। अबके मेरा आज्ञा उल्लंघन अनुचित समझकर ही इसने मुंह खोला है। गुरुराज कहते हैं, प्राणी पूर्व-भवके अभ्यासके कारण इसके सम्यक्त्व आदि संस्कार निश्चल हैं कहा भी है कि शुभ और अशुभ संस्कार निश्चय पूर्व भवके अभ्यास द्वारा स्थिर हैं।"

मुनि ऐसा कहरहे थे, कि शुकराजने कहा-"स्वामिन्, सचमुच आपने जो कुछ कहा है, वह सोलहो आने ठीक है।"

पुनः केवलज्ञानी महाराजने कहा,—"भाई शुक ! इसमें आश्चर्य की तो कोई बात नहीं है। यह भव एक पूरा नाटक है, जिसमें प्रत्येक जीव अनन्तबार अनेक रूपसे एक दूसरेके साथ भाया और तरह-तरहके सम्बन्ध भोग चुका है। कहा भी है, कि—

'यः पिता स भवेत् पुत्रो यः पुत्र स भवेत्पिता ।
या कान्ता सा भवेन्माता या माता सा भवेत्प्रिया ॥'

अर्थात्—जो पिता है, वही पुत्र हो जाता है और जो पुत्र होता है, वही पिता हो जाता है, जो स्त्री होती है, वही माता हो जाती है और जो माता होती है, वही स्त्री हो जाती है। मतलब यह, कि भिन्न-भिन्न समय मनुष्य का दूसरेके साथ भिन्न-भिन्न प्रकारका सम्बन्ध होता है।

'नसा जाइ नसा जोणी न तं ठाणं न तं कुलं
न जाया न मुया जत्थ, सव्वे जीवा अणंतसो।'

अर्थात् ऐसी कोई जाति नहीं, ऐसी कोई योनि नहीं, ऐसा कोई स्थान नहीं, ऐसा कोई कुल नहीं जिसमें अनन्त प्राणी अनन्त बार [illegible] अर्थात् [illegible]

[illegible]

[illegible]

इन्द्रके समान हुआ था। देवांगनाएँ राजाकी बड़ी भक्त थीं। लोमशऋषिको देखते ही राजाका मन हाथसे निकल गया और वे लोमशऋषिको [illegible] पकड़ कर अपने महलमें ले गये। कहा भी है, कि—

> "यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
> एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥"

अर्थात्—यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक इनमें से यदि एक भी मनुष्यमें प्राप्त हो, तो वह अनर्थ का कारण है, फिर जहाँ ये चारों हों, वहाँ भला कौनसी आपत्ति न होगी।

राजा, जिसे प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये, वह इन्हीं चारों दुर्गुणोंके वशीभूत होकर प्रजाके ऊपर बड़ा अत्याचार करता है। [illegible]

[illegible]

करवायो; पर राजाने एक न सुनी—उलटे दीवानकोही खूब गाली-गलौज देकर अपने यहांसे खदेड़ दिया। ओह! धिक्कार है, इस चित्तकी वृत्तिको, जो अन्याय करते हुए भी किसीकी भली सीख सुनना नहीं चाहती।

दीवानने सेठके पास आकर कहा,—"सेठजी! अब तो कोई उपाय नहीं नज़र आता। हाथीका कान छूना और राजाको मनमानी करनेसे रोकना, दोनों ही काम कठिन हैं। जो रक्षक हो, वही यदि भक्षक बन जाये; जो रखवाली करनेके लिये रखा गया हो, वही यदि चोर हो जाये; तो फिर लाख होशियार होते हुए भी आदमी उससे कैसे अपना बचाव कर सकता है। कहा भी है, कि—

'माता यदि विषं दद्यात् विक्रीणीत पिता सुतम्।
राजा हरति सर्वस्वं का तत्र परिदेवना?'

अर्थात्—यदि माता ही पुत्रको विष दे दे और पिता उसे बेच डाले तथा राजा सारा सर्वस्व हरण कर ले, तो फिर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

दीवानकी इन बातोंको सुनकर सेठको बड़ा दुःख हुआ

उसने बड़े ही दुःखित चित्तसे अपने पुत्रको बुलाकर कहा,—"बेटा! अब तो मैं यहाँ नहीं रह सकता। कारण, दुर्भाग्यसे मेरा ऐसा अपमान हुआ, जिसे मनुष्य तो क्या पशु पक्षी भी नहीं सह सकते। धनीका अपमान बड़ाही दुःखदायी होता है। अब तो इस अपमानका बदला लेना ही मेरे जीवनका व्रत हो गया। मुझे तो अब यही एक उपाय दिखलाई देता है, कि मैं यहाँसे काफ़ी धन लेकर किसी दूसरे राजाके पास चला जाऊँ और उसको खातिर कर, उसे अपनी ओर मिलाकर, उसीसे इसकी पूरी-पूरी मरम्मत करवाऊँ। राजाके साथ भिड़ना, राजाओंका ही काम है।"

अपने पुत्रसे ऐसा कह, अपनी अशर्फियोंसे पाँच लाख रत्न लेकर वह सेठ किसी दूसरे देशमें चला गया। सच है, अपनी प्यारी आँखें लिये क्या-क्या नहीं करते? कहा भी है, कि—

> दुःख[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
> कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible]

अब इन दोनोंमें खूब तू तू मैं-मैं होने लगी और मार-पीट की नौबत आ पहुंची, तब जहाज के खलासियों ने बीच-बचाव करते हुए कहा,—"देखो, इस तरह जहाज पर हल्ला-गुल्ला न करो। दो दिन बाद यह जहाज सुवर्णकूल नामक बन्दरगाह पर पहुँच जायेगा। वहीं उतर कर पाँच पञ्चोंको इकट्ठा करके तुम लोग अपने झगड़े का निपटारा करा लेना।" उनकी बात सुन, शंखदत्त चुप हो गया। परन्तु श्रीदत्तने अपने मनमें सोचा,—"इस कन्या को तो शंखदत्तने ही जिलाया है, इसलिये पंच तो यही फैसला करेंगे, कि यह कन्या शंखदत्त को ही मिलनी चाहिये। इस लिये सुवर्णकूल पहुँचने के पहले ही कोई कपट-रचना करनी चाहिये।"

मन-ही-मन ऐसा विचार कर, श्रीदत्तने शंखदत्तसे खूब प्रेम भरी बातें करना आरम्भ की और उसके मनमें इस बातका पूरा-पूरा विश्वास उत्पन्न कर दिया, कि अब इसके मनमें जरा भी डाह या क्रोध नहीं है। क्रमशः दिन बीता- रात हुई। उस समय जहाज के एक किनारे की खिड़की के पास खड़े हुए श्रीदत्तने पुकारा "अरे भाई शंखदत्त कहाँ हो? जरा इधर तो आओ। देखो यह कैसा बड़ा भारी अचम्भा नजर आ रहा है, [illegible] मुँहवाला [illegible] चला जा रहा है।"

इस अचम्भे को देखने के लिये ज्यों ही शंखदत्त दौड़ा हुआ उसके पास आया और समुद्र की ओर मुँह करके देखने लगा, त्यों ही इस विश्वासघाती श्रीदत्त ने उसे ऐसा धक्का दिया, कि वह तुरन्त ही समुद्रमें जा पड़

कहा,—"यह सुवर्ण रेखा नामकी प्रसिद्ध वेश्या है। यह राजा की रखेली है। पचास हजार रुपये लिये बिना यह दूसरे से कभी बात भी नहीं करती।"

यह सुनते ही उसने पचास हजार रुपये देकर उससे बातें करने का निश्चय किया और एक दिन उसे और उस पाली हुई कन्या को साथ लेकर जंगल में घूमने चला गया। वहाँ आमें के पेड़ नीचे अपनी दोनों बगल में दोनों को बैठाकर वह तरह तरह की हँसी-दिल्लगी करने लगा। इतने में एक बन्दर बहुत सी बँदरियों को साथ लिये हुए वहाँ आया और आनन्द से कामविलास करने लगा। यह देख, श्रीदत्तने सुवर्ण रेखा से पूछा,—"इस बन्दर का क्या ये सब स्त्रियाँ अपनी ही हैं?"

वेश्याने कहा,—"बन्दरों में इसकी कौनसी खोज पूछते हो? इनमें कोई इसकी माता होगी, कोई बहन होगी, कोई पुत्री होगी। आखिर ये जानवर ही तो हैं!"

यह सुन, श्रीदत्त का चित्त खिन्न सा हो गया। उसने बड़े अफ़सोस से कहा,—"इस पशु जन्म को धिक्कार है, जिसमें कोई जा-ना ही [illegible] इस जीवन को बार-बार धिक्कार है।"

[illegible]

है। ज़रा अपने पैरोंके पास ता देख। तू अपनी माँ और पुत्रीको अपने गले लगाकर दोनों बग़ल बैठाये हुए है और एक मित्रको समुद्र में फेंक आता है, तू क्या बड़-बड़ करता है? व्यर्थ क्यों मेरी निन्दा करता है!" यह कह, वह बन्दर अपनी टोलीमें जा मिला।

उसके इन वचनोंसे ब्राह्मणके कलेजे में बड़ा भारी आघात हुआ। उसने अपने मनमें विचार किया,—"ओह! यह अनोखा बन्दर कैसी हेतुकी बात कह गया! समुद्र में डाल आया हूं वह लड़की मेरी पुत्री कैसे हुई! यह सुवर्ण रेखा नामकी [illegible]

[illegible]

पानी की थाह पाये, कोई चतुर आदमी कभी पानी के अन्दर नहीं जाता। इसी तरह विचारवान् पुरुष ऐसे कामों में हाथ ही नहीं डालते, जिनमें भय की आशंका हो।

और, बहुत इधर-उधर घूमता हुआ वह एक मुनिके पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने बड़े भक्ति भावसे मुनिको प्रणाम कर कहा,—"स्वामी! बन्दर ने मुझे बड़े भ्रममें डाल रखा है। मेरा यह भ्रम छुड़ाइये।

मुनिने कहा,—"जैसे सूर्य इस पृथ्वीको प्रकाशित करता है, उसी तरह सारे संसारमें अपने ज्ञानका प्रकाश फैलाने वाले मेरे केवल-ज्ञानी गुरु इस देशमें हैं। अपने अवधिज्ञानके सहारे मुझे जो मालूम पड़ा है, वही मैं तुमसे कहता हूँ। इस बानरने जो कुछ कहा है, वह सर्वज्ञ के वचन के समान सत्य है।"

श्रेष्ठीने कहा,—"सो कैसे? कृपाकर विस्तार पूर्वक सुना-कर मेरा भ्रम दूर कीजिये।"

मुनि,—"अच्छा, मैं जो कुछ कहता हूँ उसे खूब मन लगा-कर सुनो। तुम्हारा पिता अपनी स्त्री को छुड़ाने और उसको बल पूर्वक हर ले जानेवाले राजा से बदला लेनेके इरादेसे कुछ रुपये लेकर कुशस्थल पुर से बाहर निकला और समर नामके एक पल्ली पति [illegible]) के पास चला गया। वहाँ पहुँच कर उस चोरको रुपये देकर तुम्हारे पिताने अपनी मुट्ठी में कर लिया और तब बहुत बड़ी सेना लेकर श्री मन्दिरपुर की ओर भेजा। इस [illegible] सेनाने [illegible] श्रीमन्दिरपुर

लोग इधर-उधर भाग चले। तुम्हारी स्त्री अपनी लड़कीको लेकर गंगा किनारे होते हुए सिंहपुर नामक नगरमें अपने पिताके घर चली गयी। वहीं वह बहुत दिनों तक अपने भाई का आसरे पड़ी रही क्योंकि पतिसे बिछुड़ने पर स्त्रियों को बाप भाई का ही सहारा रहता है। एक दिन आषाढ़ के महीने में तुम्हारी लड़की को एक अंधेरे स्थान में साँप ने काट खाया, जिससे वह बेहोश हो गयी। लोगोंने लाख उपचार किये; पर उसका विष नहीं उतरा। सांपके काटे हुए मनुष्य को तुरन्त नहीं जलाना चाहिये, क्योंकि यदि आयु हुई, तो वह फिर जी उठ सकता है, यह सोच कर लोगोंने उसकी [illegible] ही लपेट कर एक छोटी सुन्दर डोंगीमें रख कर [illegible] गंगाजी में बहा दिया। उसी समय गंगाजी बड़े जोरोंसे बह रही [illegible] कहीं किनारे से जा लगी। [illegible] तुम्हारे हाथ लगी। इसके [illegible]

[illegible]

"जो हो, राजा सुरकान्त प्राण लेकर भाग गये। तब बेचारी सोमश्रीको—अर्थात् तुम्हारी माता को—उस पल्ली-पतिके भील-सैनिकोंने पकड़ लिया। इसके बाद सारे नगरमें भयङ्कर लूट पाट मचाकर यह सेना अपने-अपने डेरे-तम्बुओं में जाकर विश्राम करने लगी। बेचारी सोमश्री दिन-भर उन्हीं सैनिकों के पास पड़ी रही और रातको मौक़ा पाकर निकल भागी। जंगल-जंगल भटकते-भटकते उसने एक जंगली पेड़का फल खा लिया, उसे खाते ही वह बड़ी गोरी और ठिंगने क़दकी हो गयी। सच है, मणि, मन्त्र और औषधिके गुणोंकी कोई थाह नहीं पा सकता। इसी समय उस राहसे जाते हुए कुछ व्यापारियों की दृष्टि उस पर पड़ गयी। उन्होंने उसे सुन्दर और अकेली देख, सवाभमें आकर पूछा,—"तुम देवाङ्गना हो, नाग-कन्या हो, वनदेवी हो, स्थलदेवी हो, जल-देवी हो या कौन हो? तुम मानवी तो नहीं मालूम होती।' यह सुन, वह बड़ी दीनता के साथ बोली,—"मैं कोई देवी नहीं हूँ, बल्कि तुम्हारी ही तरह हाड़ मांस की बनी हुई मानवी हूँ। यह रूप ही मेरे सङ्कट में पड़ने का कारण बन गया है। भाग्य के दोषसे यह गुण भी मेरे लिये दोष ही हो गया है।' यह सुन, उन्होंने कहा,—'अच्छा, आओ, तुम हमारे साथ चलो—हम लोग तुम्हें बड़े आराममें रखेंगे, यह कह, वे लोग बड़ी प्रसन्नताके साथ उस अपने घर ले चले और रत्नकी भाँति उसकी रक्षा करने लगे।

"कुछ दिन बातते न-बातते उन लोगों की नियत बिगड़ गयी

और प्रत्येक [illegible] उसकी खूबसूरती देखकर उसे अपनी स्त्री बनानेकी इच्छा करने लगा। [illegible] देखकर जिसके मुँहमें लार नहीं टपकने लगती! [illegible] ये लोग खूबसू- [illegible] [illegible]। यहाँ उन्होंने बहुतसा [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] और [illegible] के साथ [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

"उसके नाचने गानेकी तमाम शुहरत फैल गयी। राजाने भी यह प्रशंसा सुनी और उसको बुलवाकर उसका नाच-गान देखा, फिर तो वे उसपर ऐसे लट्टू हुए, कि उन्होंने उसे अपनी चमर-धारिणी बना लिया। इस लिये हे श्रीदत्त! यह स्त्री तुम्हारी माता ही है। कर्म-धर्म-संयोगसे इसका ऐसा रूप हो गया है। रूप रङ्ग में फ़र्क़ पड़ जानेपर पहचानना बड़ा कठिन हो जाता है। इसीसे तुम उसे नहीं पहचान सके, परन्तु उसने तुम्हें पहचान लिया, लेकिन लोभ और लज्जा के मारे कुछ भी नहीं बोली। सचमुच लोभ बड़ा ही बुरा होता है। धिक्कार है, इस वेश्या-वृत्तिको, जिसके कारण अपने बेटेको पहचान कर भी माता उसके साथ भोग विलास करने के लिये तैयार हो गयी। ऐसी निकृष्ट वेश्याओंकी पण्डितोंने जो इतनी निन्दा की है, वह उचितही है।

जब मुनि महाराजने इस प्रकारकी कथा सुनायी, तब तो श्रीदत्तको बड़ाही विस्मय और विषाद हुआ। उसने हाथ जोड़कर कहा,—"हे तीनों जगत् का हाल जानने वाले! यह सब हाल उस बन्दर को कैसे मालूम हुआ। मुझ अन्धकूप में गिरने वालेका उद्धार करनेके लिये उसने क्योंकर मनुष्योंकी सी भाषामें मुझे चेतावनी दी।"

मुनि महाराज बोले,—"तुम्हारा पिता मामाओं का ही ध्यान करता हुआ, लड़ाईमें तीर खाकर मारा गया था, इसी लिये वह मरकर प्रेत योनि को प्राप्त हुआ। वहां घूमता-फिरता तुम जहाँ

जंगलमें बैठे हुए थे, वहीं आ पहुँचा। आते ही उसने देखा, कि तुम को अपनी माता का ही पैदा समझ कर उनपर रीझे हुए हो। इसी लिये उसने उस बन्दर के शरीरमें प्रवेश कर तुम्हें ऐसा उपदेश दिया। दूसरे जन्ममें चले जानेपर भी पिछले जन्मके पुरुषकी ममताकी निजतासे दूर नहीं होता। यह बन्दर बना हुआ प्रेत अपनी पुरानी प्रीतिके कारण तुम्हारे देखते-देखते इस स्त्री को अपनी पीठपर चढ़ाकर ले जायेगा।"

मुनि महाराज के इतना कहते ही, कि यह बन्दर आया और [illegible] लिये कोशवा (दुर्गा) को अपनी पीठपर बैठा लिया [illegible] [illegible] अपनी पीठपर बैठाकर ले चला। देखते देखते [illegible] [illegible] आँखोंसे ओझल हो गये।

[illegible]! यह कैसी विचित्र बात है। [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible], फिर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिये हुए [illegible] [illegible] [illegible]।

सातवाँ परिच्छेद

इधर सुवर्ण रेखाको लेकर जब श्रीदत्त वनमें चला आया, तब सुवर्णकी दासियोंने घर आकर उसकी माँ (बूढ़ी नायका) से कहा,—"श्रीदत्त नामक एक व्यापारी पचास हजार रुपये देना स्वीकार कर उसे लेकर जंगलमें चला गया है।" यह सुनकर वह बड़ी प्रसन्न हुई, पर जब सुवर्ण रेखाके लौटने में बड़ी देर हुई; तब उसने दासियोंको सुवर्ण रेखाका समाचार लानेके लिये भेजा। दासियाँ उसी समय सुवर्ण रेखाकी खोजमें निकल पड़ीं।

बड़ी देरतक इधर-उधर खोज-ढूंढ़ करते रहनेके बाद उन्होंने श्रीदत्त को एक दूकान पर बैठा देख, उसके पास जाकर उससे सुवर्ण रेखाका समाचार पूछा। श्रीदत्तने झटपट उत्तर दिया,—"मैं क्या जानूँ, कि कहाँ गयी? मैं क्या उसका कोई गुलाम था, जो उसके पीछे पीछे डोलता फिरता और देखता चलता कि वह कहाँ जाती और क्या करती है।"

दासियोंने बुढ़िया से वातें ज्यों का त्यों सभी बातें कह सुनायीं। सुनतेही वह क्रोधसे अन्धी हो गयी और राजासे फर्याद

करने आयी, आकर बड़ी विनयके साथ कहने लगी,—"महाराज! मैं तो लुट गयी—एकबारगी लुट गयी- बरबाद हो गयी—किसी काम लायक नहीं रही।" राजाने पूछा,—"क्यों! क्या हुआ। कैसे लुट गयी? क्योंकर लुट गयी? किसने लूटा?

बुढ़िया बोली,—"मेरी सोनेसी सुन्दर सुवर्ण रेखाको श्रीदत्त नामका व्यापारी चुराकर ले भागा।"

राजा ने तुरंतही श्रीदत्तको बुला भेजा और उसके आनेपर

राजाने तुरतही श्रीदत्तको बुला भेजा और उसके आनेपर इस चोरीके सम्बन्धमें पूछना आरम्भ किया। परन्तु उसने यही सोचकर कुछ जवाब नहीं दिया, कि यदि मैं सच्ची बातभी बतलाऊंगा, तो ये लोग नहीं मानेंगे; क्योंकि कहा हुआ है, कि—

> "असम्भाव्यं न वक्तव्यं प्रत्यक्षं यदि दृश्यते।
> यथा वानरसंगीतं यथा तरति सा शिला॥"

अर्थात्—यदि अनहोनी बात आँखों देखी हो, [illegible] किसीसे न कहे [illegible] जैसे यदि कहीं बन्दरोंके [illegible] [illegible] [illegible] देखा हो, [illegible] [illegible] [illegible] है।

उस दो कुटनी मारे [illegible] [illegible] [illegible] और उन्होंने श्रीदत्तको [illegible] [illegible] कर लिया। साथही [illegible] [illegible]

में लाकर दासियों के साथ रख दिया। सच है, विधाता और राजाको मित्रताका कोई विश्वास नहीं। इनके दोस्त और दुश्मन बनते देर नहीं लगती।

अब श्रीदत्तको क़ैदखानेमें बड़ी तकलीफ़ होने लगी, तब उसने एक पहरेदारकी मार्फ़त राजाके पास यह कहला भेजा, कि मैं सारा हाल सच-सच बतला देनेको तैयार हूँ। यह सुन, राजाने उसे क़ैदखानेसे बुलवा मँगवाया और सारा हाल बयान करनेको कहा। उसने कहा,—"महाराज! उस स्त्रीको तो जंगलका एक बन्दर ले गया।" यह सुनते ही सारे दरबार के लोग खूब ज़ोर से ठहाका मार कर हँसने लगे। सब लोग विस्मयके साथ कहने लगे,—"अजी, कहीं ऐसा भी हो सकता है? यह सब इस दुष्टकी चालबाज़ी है।" सबको ऐसा कहते सुन और आप भी उसकी बातका विश्वास नहीं करते हुए राजाने उसे प्राणदण्डका हुक्म दे दिया। ठीक ही कहा है, कि बड़े आदमियोंके रंज और खुश होनेमें क्या देर लगती है?

राजाका हुक्म पाकर कई जल्लाद उसे पकड़कर वधभूमिकी ओर ले चले। वहाँ पहुँचकर श्रीदत्त अपने मनमें विचार करने लगा,—"ओह! मित्रका वध करने और माता तथा पुत्रीके साथ भोग करनेकी इच्छा करनेसे ही मुझे यह दण्ड आज मिल रहा है। मेरा पाप तत्काल फल गया। विधि-विडम्बना तो देखो, कि मैं सच कहनेपर भी मारा जाता हूँ। जैसे उमड़ते हुए समुद्रको कोई पार नहीं पा सकता, वैसेही कुटिल विधाताकी गतिमें

अब तो सबको विश्वास हो गया, कि श्रीदत्तने जो कुछ कहा था वह बिलकुल ठीक था। इसके बाद उन लोगोंने मुनि महाराजसे सर्व पूर्व-वृत्तान्त पूछ कर मालूम कर लिया। तदनन्तर सरल और स्वच्छ हृदयवाले श्रीदत्तने पूछा,—"प्रभो! मुझे कृपाकर यह बतलाइये, कि अपनी माता और पुत्रीपर मेरा क्योंकर अनुराग हो गया?"

गुरुने कहा,—"इसके बारेमें जाननेके लिये तुम्हें पूर्व जन्मका वृत्तान्त मालूम होना चाहिये। उसे मन लगाकर सुनो—

आदिनाथ-चरित्र।

अगर आप आदिनाथ भगवानका सारा जीवन चरित्र देखना चाहते हैं तो हमारे यहाँसे मंगवाइये। इस चरित्रके पढ़नेसे आपको जैन धर्मका सारा रहस्य मालूम हो जायेगा। पुस्तकके भीतर सतरह मनोरञ्जक चित्र दिये गये हैं, जिनसे भगवानका जीवन हू-बहू सामने दिख जाता है। भाषा भी सरस और सरल लिखि गई है। जिससे सामान्य बुद्धि मनुष्य भी यथेष्ट रीतिसे समझकर ज्ञान सपादन कर सकता है। एक बार मंगवा कर अवश्य देखिये। मूल्य सजिल्द ५) अजिल्द ४)

पता—पंडित क शीनाथ जैन

मुद्रक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता।

२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

हो गया। उसने अपने मनमें विचार किया,—"ओह! मुझे धिक्कार है, जो मैं अपने ऐसे विश्वासी मित्रको मारनेके लिये तैयार हो गया। ओह! मैं बड़ा ही नीच हूं।" यही सोचकर उसने अपने मित्रको मारनेके लिये उठाया हुआ हाथ नीचे कर लिया।

"जैसे खुजलानेसे खुजली बढ़ती जाती है, वैसेही ज्यों-ज्यों लाभ होता जाता है त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है। इसी नियम के अनुसार वे लोग द्रव्योपार्जन करते हुए पुनः देशमें भ्रमण करने लगे। कभी-कभी लोभ एकही भवमें—एकही पलमें—घोर अनर्थ कर डालता है। एक दिन वे दोनों लोभी ब्राह्मण कृष्णा नदी में पैठे। एकाएक नदीमें बाढ़ आ जानेके कारण वे दोनों ही डूब गये। मरने बाद वे बहुतसी तिर्यंच-योनियों में भ्रमण करते फिरे। बहुत दिनों बाद उन्होंने मनुष्यका जीवन पाया और फिर दोनों मित्र ही हुए। चैत्रका जीव तो तुम हो और मैत्रका जीव यही शंखदत्त था। पूर्वजन्ममें उसने तुम्हारी हत्या करनेका विचार किया था, इसी लिये इस भवमें तुमने उसे समुद्रमें डाल दिया। जैसे सूद पर दिया हुआ रुपया फिर सूद समेत मिल जाता है, वैसेही एक भवमें मनुष्य जो-जो कर्म करता है, उसका फल दूसरे जन्ममें सूद समेत मिल जाता है।

"अस्तु, जब तुम नदीमें डूब गये, तब तुम्हारी दोनों स्त्रियाँ-गंगा और गौरी तुम्हारे वियोगसे बड़ीही दुःखित हुई। उन्होंने सारा भोग विलास छोड़, वैराग्य धारण कर लिया और महीने-भरका उपवास करनेवाली तापसी हो गयीं। वास्तवमें विधवा

किया। इस क्रोधको धिक्कार है, जिससे मनुष्यको इस प्रकार दोष लग जाता है। यह क्रोध सब जप-तप और सत्कर्मोंका नाश कर देता है।

"कुछ दिन बाद एक वेश्याको बहुतसे कामी पुरुषोंके साथ भोग विलास करते देखकर गङ्गाने अपने मनमें विचार किया,—'यह धन्य है, जो इस प्रकार जूहीकी तरह खिली हुई बहुतसे रसिया भौरोंको भी खुश करती है। मैं बड़ीही अभागिनी हूँ, क्योंकि मेरे स्वामी भी मुझे छोड़कर चले गये।' इस प्रकार बुरे विचार मनमें आनेसे उसकी आत्मामें दुष्कर्मका कीचड़ लग गया। सच है, मूर्खता लोहेसे भी बढ़कर दुर्भेद्य होती है।

"क्रमश. वे दोनों स्त्रियाँ मरकर ज्योतिर्लोकमें जाकर, देवी हुईं। वहाँसे च्युत होनेपर वे तुम्हारी माँ और पुत्री होकर उत्पन्न हुईं। उस भवमें साँप काटनसे मर जानेका बात दासी से कहनेके कारणही तुम्हारी पुत्रीको इस भवमें साँपने काट खाया और क़ैदका बात कहनेके कारण तुम्हारी माता म्लेच्छ द्वारा कैद की गयी। पूर्व जन्ममें तुम्हारी माताको वेश्याका वैभव देखकर लालच हुआ था, इसीसे यह इस जन्ममें वेश्या हुई। पूर्व जन्ममें किये हुए कर्मोंके प्रभावसे मनुष्यको यातना हो जाती है। मन और वचनसे किये हुए कर्मका फल शरीरसे भोगना पड़ता है। पूर्व जन्ममें ये दोनों तुम्हारी स्त्रियाँ थीं, इसी लिये इनके साथ सम्भोग करनेकी तुम्हें इच्छा हुई; क्योंकि पूर्व जन्मके अभ्यास-के कारण दूसरे जन्ममें वैसा संस्कार होता है पूर्व जन्ममें

गुरुके ऐसे वचन सुन, वह चकित भावसे चारों ओर देखने लगा, इसी समय उसे दूरसे आता हुआ उसका मित्र दिखाई दिया। उसे आते देख, श्रीदत्तने शर्मसे सिर झुका लिया। इधर शंखदत्तको श्रीदत्तपर दृष्टि पड़तेही बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वह उसे मारने दौड़ा, किन्तु राजा आदि को देखकर सहम गया और चुपचाप खड़ा हो गया। यह देख, गुरुदेवने कहा,—"शंखदत्त! क्रोध मत करो। क्रोधकी अग्नि अपने आपको ही जला देती है। क्रोधकी उपमा पण्डितोंने चाण्डालसे दी है। इस चाण्डालका कभी स्पर्श भी नहीं करना चाहिये, इस चाण्डालको छूनेसे लाख गंगा नहानेपर भी आदमी शुद्ध नहीं होता।"

गुरुके मुखसे निकली हुई यह तत्त्व-वाणी सुनकर शंखदत्त वैसेही शान्त हो गया, जैसे मन्त्र पढ़नेपर अग्नि शान्त हो जाता है। इसके बाद श्रीदत्तने उसका हाथ पकड़कर उसे अपने पास बैठाया। इसके बाद उसने गुरुसे पूछा,—"महाराज! मेरा यह मित्र किस तरह समुद्रसे निकल आया, सो कृपाकर बतलायें।"

मुनिवरने कहा, "समुद्रमें गिरतेही इसे एक तख्ता हाथ लग गया। सच है जिसकी आयु पूरी नहीं होती, वह मौतके मुंह पड़कर भी बच जाता है। इसके बाद अनुकूल पवनके सहारे बहता हुआ यह सातवें दिन समुद्रके किनारे बसे हुए [illegible] नामक नगरमें आ पहुंचा। [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] इस तरह [illegible] [illegible] समुद्रका [illegible]

"हे प्राणियो! तुम सदा धर्म का आचरण करनेकी ही चेष्टा करते रहो; क्योंकि सर्व श्रेष्ठ अर्थोंकी सिद्धि और सम्यक्त्व तथा देश-विरति आदि गुण धर्महीके वशमें हैं। अन्यान्य धर्म और उत्तम कर्म अच्छा फल देते हैं सही, पर यह जैन-धर्म तो सदा, सब प्रकार, सबसे श्रेष्ठ, कल्पवृक्षके समान है।"

यह देशना श्रवणकर, राजा इत्यादि जितने मोक्षार्थी वहाँ बैठे थे, उन सब लोगोंने सम्यक्त्व पूर्वक देश-विरति श्रावकधर्म अङ्गीकार कर लिया। यह देव और सुवर्णरेखा भी सम्यक्त्व प्राप्त करनेमें समर्थ हुए और पूर्व भवके प्रेमके कारण उनके दिव्य और औदारिक शरीरका संयोग बहुत दिनों तक बना रहा।

इसके बाद राजाके परम प्रेम-पात्र श्रीदत्तने अपनी कन्या और आधी सम्पत्ति शंखदत्तको दे डाली। बाकीका आधा द्रव्य उसने निर्मल बुद्धिके साथ अच्छे कामोंमें व्यय किया और अन्त में उसने गुरुके पास आकर चारित्र ग्रहण कर लिया। फिर तो वह नाना स्थानोंमें विहार करता हुआ, मोहराजाको पराजित कर, चारों घाती कर्मों का विनाशकर, यहाँ आ पहुँचा और यहीं इसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। हे महाराज मृगध्वज! मैं ही वह श्रीदत्तमुनि हूँ। जिसका कथा मैंने अभी तुम्हारी आपको सुनाया है। हे शुकराज! [illegible] कि मैंने तुम्हें अभी सुनाया है, मेरी [illegible] तुम्हारे [illegible] हुआ हूँ। इस लिये इसमें [illegible] नहीं है क्योंकि यह तो [illegible] है।

भी उँजियाले पाखके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगा। क्रमशः यह लड़का पाँच वर्षका हुआ और जैसे रामके पीछे-पीछे लक्ष्मण डोलते फिरते थे, वैसेही यह भी शुकराजके पीछे-पीछे डोलने लगा। एक दिन राजा अपने दोनों पुत्रोंके साथ दरबारमें बैठे हुए थे। उसी समय ड्योढ़ीदारने आकर खबर दी,—"महाराज! अपने शिष्योंके साथ गाङ्गिल ऋषि द्वार पर आये हैं।" यह सुन, राजाको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने ऋषिको शीघ्र बुला लानेकी आज्ञा दी। उनके आने पर राजाने उन्हें बड़े आदरसे सुन्दर आसन पर बैठाते हुए प्रणाम किया। मुनिने भी हाथ उठाकर कल्याणकारी आशीर्वाद दिया। इसके बाद राजाने उनसे तीर्थ और आश्रमका समाचार पूछनेके बाद वहाँ आनेका कारण पूछा। उस समय कमलमालाको बुलवाकर, मुनि कहने लगे,—"राजन्! आज रातको स्वप्नमें गोमुख यक्षने मुझसे कहा, कि मैं तो अब विमलगिरि नामक मूल तीर्थको जाता हूँ। इस पर मैंने पूछा कि अब इस तीर्थकी रक्षा कौन करेगा? उसने कहा, कि तुम्हें प्रेम और सम्पूर्ण समान शुक-राज और हंसराज नामके जो दो बालक तुम्हारे देखे हुए हैं, वे बड़े ही आश्चर्य करनेवाले हैं। इसलिये [illegible] नहीं है [illegible]। [illegible] दी आ-दमी [illegible] अपने पुत्रोंको [illegible] बहुत बड़ा हुआ है। मैंने कहा, कि [illegible] हुए हैं, इसलिये मैं इन कुमारोंके लिये यहाँ [illegible]।" यह सुनकर ही हम यहाँ

दर्शन करनेके लिये जाना चाहता हूँ। इसलिये यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं ही जाऊँ'। यदि ऐसा हो, तो मुझे वैसाही आनन्द होगा, जैसा संगीतके प्रेमीको मृदंगकी ध्वनि सुनकर, भूखेको भोजन पाकर और नींदमें अलसाये हुएको कोमल सेज पाकर, होता है।"

अपने बड़े बेटेकी यह बात सुन, राजाने अपने मन्त्रीकी ओर देखा—मानों उनसे राय पूछी। राजाका मतलब ताड़कर मन्त्रीने कहा,—"महाराज! जहाँ माँगनेवाले स्वयं शाण्डिल्य ऋषि, देनेवाले आप, रक्षाकी जानेवाली वस्तु तीर्थ-भूमि और रक्षाके लिये जानेवाले स्वयं राजकुमार शुकराज, वहाँ दूसरा कौन नहीं कर सकता है? यह बात तो बड़ीही उचित प्रतीत होती है। इसलिये आप प्रसन्न मनसे राजकुमारको जाने दें।

इसके बादही पिताकी आज्ञा पा, राजकुमार शुकराज, बड़े आनन्दके साथ, पिताके चरणोंकी वन्दना कर, ऋषिके साथ-साथ चल पड़े। थोड़ेही समय बाद राजकुमार उस तीर्थमें पहुँच गये। उनके आतेही इस आश्रमके तरु-वृक्षोंकी वृद्धि हो गयी [illegible] और [illegible] सब आ रहा। पूर्वमें किये हुए [illegible] बहुत बड़ा होता है। इसीसे [illegible]

[illegible] हुए कुमार शुकराज एक दिन [illegible] गुफाको [illegible] हृदय

पापके योगसे मेरा शरीर बड़ी व्याधि पा रहा है। मैंने गिरतेही मारे तकलीफके उस लड़कीको और साथ-ही-साथ अपनी दुष्ट-बुद्धिको छोड़ दिया। फिर तो जैसे बाज़के हाथसे छूटकर चिड़िया भाग जाती है, वैसेही वह लड़की भाग गयी। लोभ और मोहमें पड़कर मैंने तो अपना शरीरभी गँवाया।"

यह सुनतेही शुकराज बड़े प्रसन्न हुए; क्योंकि वे तो इसी विद्याधरको ढूँढ़ रहे थे। उसकी बातोंसे वे समझ गये, कि वह लड़कीभी यासही पास कहीं होगी। यही सोचकर वे चारों ओर उसे खोजने लगे। खोजते-खोजते वह एक जगह एक मन्दिरके भीतर बैठी हुई मिल गयी। यह देख, उसे मधुर वचनोंसे ढाँढ़स और विश्वास दे, राजकुमार शुकराज उसे धाई माँके पास ले गये। दोनों एक दूसरीको देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। उन्हें सुखी कर, राजकुमार उस विद्याधरके पास चले आये और दवा-दारू तथा सेवा-शुश्रूषा करके उसका रोग भी दूर करनेका उपाय करने लगे।

क्रमशः वह विद्याधर नीरोग होगया और शुकराजका बिना मोलका गुलाम हो गया पुण्यकी महिमा बड़ी विचित्र होती है। एक दिन शुकराजने उस विद्याधरसे पूछा,—"तुम्हारी वह नभोगामिनी विद्या—जिसके सहारे तुम आसमानमें उड़ते थे—है कि नहीं?" उसने कहा,—"विद्या तो है परन्तु काम नहीं करती। अगर कोई सिद्ध विद्यावान मनुष्य अपना हाथ मेरे सिरपर रखकर पुनःस्थापित विद्या सिखला दे, तो फिर वह फलवती हो जायेगी।"

शुकराजको और भी प्यार करने लगे। कुछ दिन बाद राजा शत्रुमर्दनने अपनी लड़की शुकराजको ब्याह दी। सच है, प्रीति इसी तरह धीरे-धीरे बढ़ती आती है। बड़ी धूम धामसे विवाह हुआ। राजाने वरको बहुतेरा द्रव्य दान दिया। राजाके अनुरोधसे शुकराज अपनी नव-विवाहिता पत्नीके साथ आनन्द-विलास करते हुए कुछ दिन ससुरालमें ही रह गये।

जैसे सभी रसीली चीजें लवण पड़नेसे ही स्वादिष्ट लगा है, वैसेही इस लोकमें सभी काम पुण्य द्वारा ही अच्छे फल देनेवाले होते हैं। इसलिये सांसारिक कार्योंके करनेके साथ-ही-साथ मनुष्यको कुछ धर्मके कार्योंकी भी चिन्ता और आचरण करना चाहिये। यही सोचकर एक दिन शुकराज, राजाकी आज्ञा ले, उसी विद्याधरके साथ-साथ वैताढ्य-पर्वतपर चैत्य-वन्दन करने चले। वैताढ्य-पर्वतकी वह अनुपम शोभा देखते हुए वे दोनों क्रमशः गगनवल्लभ पुरमें आ पहुँचे। वहाँ पहुँच-कर उस विद्याधरने अपने माता-पितासे शुकराजके किये हुए उपकारकी बात बतलायी। यह सुनकर उसके माता-पिता बड़े ही प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना लड़का शुकराजको ब्याह दी। बड़ी धूमधामसे ब्याह हुआ। विद्याधरोंके राजाने उनसे कुछ दिन वहीं रहनेकी प्रार्थना की। तीर्थ दर्शनमें चित्त लगा हुआ होने पर भी राजकुमार शुक उनके आग्रहसे कुछ दिन वहीं रह गये।

कुछ दिन बाद, एक दिन राजाकी आज्ञा ले, दोनों साले-बहनोई, एक विमानपर बैठकर तीर्थ वन्दन करने चले। इसी

पास लौट आओ और अपने दर्शनामृतसे अपनी माताको सुखी करो। जैसे सेवक स्वामीका अनुसरण करते हैं, वैसेही सुपुत्र अपने माता-पिताका, सुशिष्य अपने गुरुका और कुलवधुएँ अपनेसे बड़ोंका अनुसरण करती हैं। माता-पिता अपने सुखके ही लिये पुत्र उत्पन्न करते हैं। फिर यदि पुत्रसे उन्हें दुःख ही हुआ, तो यही समझना होगा, कि जलसे आगही निकली। देखो, माता पितासे भी बढ़कर माननीय होती है। शास्त्रकारोंने माताको पितासे हज़ार गुनी बड़ी बतलाया है। कहा भी है, कि—

'उद्रे गर्भः प्रसवसमये सोढमत्युग्रशूलं,
पथ्याहारैः स्नपनविधिभिः स्तन्यपानप्रयत्नैः।
विष्ठामूत्रप्रभृतिमलिनैर्कष्टमासाद्य सद्यः,
त्रातः पुत्रः कथमपि यया स्तूयतां सैव माता।'

अर्थात्—'जिसने नौ महीनों तक गर्भमें रखा, प्रसवके समय बहुत बड़ी वेदना सही, पथ्याहार-पूर्वक रहते हुए सदा बच्चोंको पुष्ट दूध पिलाया, पाखाना-पेशाब आदि साफ करने का कष्ट उठाती रही,—इन सब कष्टोंको सहते हुए भी जिस माता-ने पुत्रको [illegible], वह धन्य है'

उसकी बात सुनतेही शुकराजकी आँखोंमें जल भर आया। उसने [illegible] देखि [illegible] साधुके इतने पास आकर बिना बड़ी [illegible] नमस्कार किये मैं क्योंकर पीछे लौट जाऊँ? जैसे [illegible] काम होते हुए भी [illegible] अच्छे अच्छे [illegible] हुए पापको छोड़कर [illegible] जाता वैसेही [illegible] हज़ार आदमीका काम [illegible] भी [illegible]

दसवाँ परिच्छेद

अब शुकराज सयाने हो चुके हैं। भविष्यतमें उन्हीं को गद्दी मिलनेवाली है। इसलिये राजा अभीसे उन्हें राजकाजके काम सिखला रहे हैं। इन दिनों वे बराबर राजदरबारमें आते और अपने पिताको राजकाजमें पूरी-पूरी सहायता देते हैं। वास्तवमें पुत्रका कर्त्तव्यही पिता की सहायता करना है। बड़े सुखसे दिन बीतने लगे।

इसी तरह एक बार वसन्तऋतु का समय आया। यह ऋतु विलासियोंके लिये बड़ी ही आनन्ददायक होती है। राजा एक दिन अपने दोनों पुत्रों और समस्त परिवारके साथ बागकी सैर करनेके लिये गये। वहाँ सब लोग लाज-सङ्कोच छोड़कर अलग अलग मनमानी मौजें कर रहे थे। इतनेमें बड़े जोरका कोलाहल होने लगा। राजाने अपने एक सिपाही को इस शोर-गुलका कारण जाननेके लिये भेजा। उसने सब हाल दर्याफ्त करके लौट आकर कहा,—"महाराज! सारङ्गपुर नामक नगर के राजा वीराङ्गका पुत्र शूर किसी पुराने वैरका बदला भंजानेके

दसवाँ परिच्छेद

अब शुकराज सयाने हो चुके हैं। भविष्यतमें उन्हीं को गद्दी मिलनेवाली है। इसलिये राजा अभीसे उन्हें राजकाजके काम सिखला रहे हैं। इन दिनों वे बराबर राजदरबारमें आते और अपने पिताको राजकाजमें पूरी पूरी सहायता देते हैं। वास्तवमें पुत्रका कर्त्तव्यही पिता की सहायता करना है। बड़े सुखसे दिन बीतने लगे।

इसी तरह एक बार वसन्तऋतु का समय आया। यह ऋतु विलासियोंके लिये बड़ी ही आनन्ददायक होती है। राजा एक दिन अपने दोनों पुत्रों और समस्त परिवारके साथ बागकी सैर करनेके लिये गये। वहाँ सब लोग लाज-सङ्कोच छोड़कर अलग अलग मनमानी मौजें कर रहे थे। इतनेमें बड़े जोरका कोलाहल होने लगा। राजाने अपने एक सिपाही को इस शोर-गुलका कारण जाननेके लिये भेजा। उसने सब हाल दर्याफ्त करके लौट आकर कहा,—"महाराज! सारङ्गपुर नामक नगर के राजा वीराङ्गका पुत्र शूर किसी पुराने वैरका बदला भंजानेके

इरादेसे आपके पुत्र हंसके साथ लड़नेके लिये चला आ रहा है। यह सुन, राजा सोचने लगे,—"अजब तमाशा है। राज्य मैं कर रहा हूँ, राज्यकी सम्हाल शुकराज कर रहा है; वीराङ्ग मेरे अधीन है, फिर शूर और हंसमें वैर क्योंकर हुआ?" ऐसा विचार कर राजा शुकराज और हंसराजको साथ लिये हुए आगे बढ़े। इतनेमें एक और सिपाहीने आकर कहा,—"महाराज! पूर्व जन्ममें हंसके जीवने शूरके जीवको बहुत दुःख दिया था, इसीलिये शूर हंससे लड़नेके लिये चला आरहा है।" यह सुनते ही वीर पुरुषोंमें शिरोमणि राजकुमार हंसने अपने पिता और भाईको आगे बढ़नेसे रोक दिया और आपही अकेले उससे लड़नेके लिये तैयार हुए। शूर भी तरह-तरहके हथियार लिये हुए युद्धके रथपर सवार हो, युद्ध-भूमिमें आ पहुँचा।

देखते-देखते दोनों वीर कर्ण और अर्जुनकी भाँति एक दूसरे पर हथियार चलाने लगे। बड़ी देरतक युद्ध होता रहा। तोभी उन दोनोंकी युद्ध करनेकी इच्छा पूरी नहीं होती थी। दोनों ही एक समान शूर, वीर, धीर और पराक्रमी थे। यह देख, विजय-लक्ष्मी भी बड़े संशयमें पड़ गयी, कि किसके गलेमें जयमाल डालूं। बड़ी देरकी लड़ाईके बाद हंसने ठीक उसी तरह शूरके सब हथियार काट डाले, जैसे इन्द्रने सब पर्वतोंके पर काट लिये थे। कुल हथियार कट जानेपर शूरका क्रोध और भी बढ़ा और वह वज्रके समान घूंसा ताने हंसको मारने दौड़ा। यह देख, राजा मृगध्वज बड़ी शङ्कामें पड़कर शुकराजकी ओर देखने लगे।

पिताका मतलब समझकर शुकराजने अपनी विद्या हंसके शरीर में प्रविष्ट कर दी। उस विद्याके प्रभावसे हंसने उसी समय शूरको तिनकेकी तरह उठाकर फेंक दिया। वह गिरतेही मुर्च्छित हो गया। बड़ी देरतक उसके सेवकोंने उसके चेहरे-पर पानीके छींटे दिये, तब कहीं जाकर उसे होश हुआ। परन्तु क्रोध करनेका कोई फल नहीं निकला—उलटे दुःखही हुआ, यह देखकर वह अपने मनमें विचार करने लगा,—"मुझे धिक्कार है। मैंने क्रोध करके व्यर्थही इस जन्ममें भी अपमान सहा और अगले जन्ममें भी रौद्र-ध्यानसे बँधे हुए पाप-कर्मके कारण अनन्त दुःख भोग करूँगा।" ऐसा विचार कर वह राजा मृगध्वज और उनके दोनों पुत्रोंके पास आकर माफ़ी माँगने लगा। यह देख, अचम्भेमें पड़े हुए राजाने पूछा,—"तुमने अपने पूर्व-जन्मका हाल क्योंकर जाना?"

वह कहने लगा,—"महाराज! एक दिन श्रीदत्त केवली मेरे नगरमें आये हुए थे। उनसे मैंने अपने पूर्व जन्मका हाल पूछा,तो उन्होंने कहा,—

'पूर्व समयमें भद्दिलपुर नामक नगरमें जितारि नामके राजा रहते थे जिनके हंसी और सारसी नामकी दो रानियाँ थीं और सिंह नामका एक प्रधान मन्त्री था। बड़ा कठिन प्रण करके वे लोग तीर्थ-यात्रा करने चले और काश्मीरदेशमें गोमुख यक्षके दिखलाये हुए विमलागिरि तीर्थमें श्रीजिनेश्वरकी प्रतिमाको प्रणाम करनेके बाद वहीं एक सुन्दर नगर बसाकर परिवार-

धिक्कार देने लगा। उसने सोचा,—"अधिकार का मद कैसा प्रबल होता है! अधिकार पाकर मनुष्य इतना घमण्डसे भर जाता है, कि हरदम मनमानी करनेको तैयार रहता है। फिर तो वह कोई काम सोच-समझकर—उसके परिणामका विचार कर नहीं करता। पराये दुःखोंपर तो उसकी निगाहही नहीं जाती। अपने आगे वह और सभी लोगों को तुच्छ ही समझता है।"

"यही सब सोचता-विचारता हुआ वह उसी जङ्गलमें घूमने लगा। एक तो रास्ता नहीं मालूम—दूसरे लगातार चलते रहने पर भी खाने-पीनेका कोई ठिकाना नहीं, इसलिये एक दिन आर्त्त-रौद्रध्यान करते-करते उसकी मृत्यु हो गयी। वह भद्दिल-पुरके पासही एक जगह नाग होकर रहा। एक दिन संयोग-वश भद्दिलपुरके मन्त्री वहीं पहुँच गये, बस उसने उन्हें तुरत काट खाया, जिससे उनकी तत्काल मृत्यु हो गयी। होते होते वही नाग मरकर आपके वीराङ्ग राजाका पुत्र शूर हुआ है और मन्त्रीश्वर पूर्वजन्मके कुछ पुण्योंसे अन्तमें विमलाचल-तीर्थके सरोवरका हंस हुआ। वहाँ तीर्थंके मन्दिरको देखकर उस हंसको जाति-स्मरण हो आया और वह जिन भगवान्की [illegible] एक कूप [illegible] हुए त्रिलोकनाथके [illegible] बहुत [illegible] लगा। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस प्रकार बहुत दिनोंतक [illegible] [illegible] करनेके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] देखता हो

ये एक जगह बैठे हुए यही सब सोच रहे थे, कि इतनेमें एक गौरवधाम आदमीने वहाँ आकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने पूछा,—"भाई! तुम कौन हो?" यह राजाके इस प्रश्नका उत्तर देनाही चाहता था, कि इतनेमें बड़े ज़ोरसे आकाशवाणी हुई, कि "हे राजन्! आप निश्चयही इसे अपनी रानी चन्द्रावती काही पुत्र जानें, इसमें सन्देह न करें। यदि इसमें आपको कुछ सन्देह हो, तो यहाँसे पाँच योजन दूर दो पर्वतोंके बीचमें जो कदली-वन है, उसीमें ध्यानयोग धारण किये हुई वहीं रहने वाली यशोमती नामकी योगिनीसे सारी बातें पूछ ले सकते हैं।"

यह आकाशवाणी सुनतेही राजा उस पुरुषके साथ-साथ झटपट ईशान-दिशाकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सचमुच कदली-वनमें योगिनीको बैठे देखा। राजाको देखतेही वह योगिनी बड़े प्रेमके साथ बोली,—"हे राजा! तुमने जो कुछ सुना है, वह सोलह आने सच है। इस संसार रूपी जंगल का सफ़र करना बड़ा ही कठिन कार्य है। परन्तु तुम्हारे जैसे तत्त्वज्ञानी भी इसके मोहमें पड़ जाते हैं, यही बड़े भारी आश्चर्य की बात है। इसके विषयमें मैं तुम्हें सब बातें शुरूसे सुनाती हूँ। ध्यान देकर सुनो।

"चन्द्रापुरी नामक नगरीमें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल यश-वाले सोमचन्द्र नामक एक राजा थे, उनकी स्त्रीका नाम भानु-मती था। हेमवन्त क्षेत्रमें सौधर्म-देवलोकमें गये हुए युगल आत्मायें रानी भानुमतीके गर्भसे उत्पन्न हुए। एक पुत्र और

एक कन्या हुई। पुत्रका नाम चन्द्रशेखर और कन्याका चन्द्रा-वती रक्खा। ज्यों-ज्यों दोनोंकी अवस्था बढ़ने लगी, त्यों-त्यों उनके शारीरिक सौन्दर्य बढ़ता गया और दोनों एक दूसरेको देख-देखकर पूर्व जन्मकी बातें याद करते हुए समय बिताने लगे। क्रमशः दोनोंने युवावस्थामें पैर रक्खा। तब राजाने पुत्रकी शादी [illegible] नामक एक राजकुमारीके साथ और कन्याकी शादी [illegible] साथ कर दी। परन्तु पूर्व जन्मके संस्कारके कारण दोनों का मन एक दूसरेसे ऐसा मिला हुआ था, कि दोनों परस्पर प्रेम-चि-न्तन [illegible] हो [illegible] कर रहे थे। सच है, यह पूर्व जन्मका संस्कार भी बड़ा ही विकट होता है। [illegible] [illegible] हैं, कि [illegible] हो जाते हैं।

[illegible]

[illegible]

"यह सुन, उस यक्षने उसे एक अञ्जन देकर कहा,—'लो, इसे आँखोंमें लगानेसे तुम अदृश्य हो जाया करोगे। फिर तो जब तक राजा मृगध्वज चन्द्रावतीके पुत्रको अपनी आँखों नहीं देखेंगे, तबतक तुम खूब मौजके साथ उसके साथ सुख भोग करते रहोगे। पर हाँ, जिस दिन राजा उस पुत्रको देख लेंगे, उस दिन यह सारा भेद खुल जायेगा।' यह कह, वह यक्ष अन्तर्धान हो गया। चन्द्रशेखर खुशी-खुशी रानी चन्द्रावतीके महलमें गया। अञ्जन लगाकर अदृश्य बने हुए उसने एक मुद्दत तक वहाँ आनन्द से रानीके साथ भोग-विलास किया। काल पाकर चन्द्रावतीके गर्भसे चन्द्राङ्क नामका पुत्र पैदा हुआ। उस अञ्जनके प्रभावसे उस पुत्रकी पैदाइशका हाल भी किसीने नहीं जाना। पुत्रके पैदा होतेही चन्द्रशेखर उसे लिये हुए अपनी स्त्रीके पास चला गया और इसीपर इसके पालन-पोषणका भार सौंप दिया। वह भी ठीक अपने पेटके बच्चेकी तरह उसका पालन-पोषण करने लगी। सच है, सती स्त्रियाँ अपने पतिके कर्म-धर्मकी ओर न देख केवल अपने कर्तव्यकी ओर देखती हैं। उनका काम पतिपर पूर्ण रूपसे प्रेम रखते हुए उसकी आज्ञाका पालन करना ही है। चाहे पति दूर रहे या निकट पर उनका प्रेम निरन्तर एकसा बना रहता है। यद्यपि चन्द्रशेखर एक ह्रमानेतक यशोमतीसे अलग रहा और आया तो एक बच्चेको लिए आया, तथापि यशोमतीने उससे कुछ भी शिकायत नहीं की और फट इस बालक का पालन पोषण करना आरम्भ कर दिया। कुल-वधुओंकी यही रीति है।

"पर स्त्रीका मन बड़ा ही चञ्चल होता है। वह कभी एकसाँ नहीं बना रहता। कारण पाकर उसके विचारो और बुद्धिमें हेरफेर होही जाता है। यशोमतीका भी यही हाल हुआ। जब वह बालक बढ़ता-बढ़ता जवान हो गया, तब पति-वियोगसे पीड़ित यशोमतीके विचारोंने भी पलटा खाया। उसने सोचा-'जब मेरे स्वामी चन्द्रावतीकी चाहमें चूर होकर निरन्तर मुझे छोड़, उसीके पास पड़े रहते हैं, और मैं उनका मुँह भी नहीं देख पाती, तब मैं भी क्यों नहीं इस सुन्दर युवाके साथ मनमानी मौज उड़ाऊँ? ऐसा विचार कर, विवेक और विचारको ताक पर रख, उसने चन्द्राङ्क को अपने पास बुलाकर कहा,-'चन्द्राङ्क! यदि तू मेरे साथ रमण कर, तो यह सारा राज्य तेरा हो जायेगा।'

"उसके ऐसे वचन सुन, चन्द्राङ्क तो मानो आसमानसे हो गिरा। उसने चकित होकर कहा,—'माता! ऐसी अनुचित, अनहोनी और अनचीती तुम्हारे मुँहसे क्योंकर निकली?'

"वह बोली,—'हे सुन्दर! मैं तेरी माता नहीं हूँ। तेरी माता तो राजा मृगध्वजकी रानी चन्द्रावती है।'

"उसकी यह बात सुन, उसकी प्रार्थनाको पैरोंसे ठुकराकर वह असल हाल जाननेके लिये घरसे बाहर हो गया और आपकी खोजमें इधर-उधर भटकता हुआ आज आपके पास आही पहुँचा।

"उधर पति और पुत्र, दोनोंको खोकर यशोमतीको अपने

मुझे विचारपर बड़ी ग्लानि हुई और यह घर-द्वार छोड़ योगिनी बन गयी। वही यशोमती इस समय आपके सामने बैठी है। मैंने सच-सच सब हाल आपको सुना दिया। उसी यक्षने आकाश-वाणी द्वारा आपको मेरे पास आनेकी आज्ञा दी है।"

यह सारा वृत्तान्त श्रवण कर राजा मृगध्वजको कोपके साथ-ही-साथ बड़ा भारी खेद हुआ। सच है, पापके दुष्परिणाम देखकर किसके चित्तमें दुःख नहीं होता? राजाका यह हाल देख, वह योगिनी फिर कहने लगी,—"देखिये, इस संसारमें पुत्र मित्र, स्वजन, घर, धन आदि चीजें सभी क्षण-भङ्गुर और विनाशशील हैं, मानी अज्ञानी जीव इन्हें ही अपना समझकर इनपर ममता करता है। जो अपनी आत्म शक्तिको पहचानकर, मिथ्यात्वके मार्गको छोड़ कर, योगदृष्टिसे विचार कर, शुद्ध मार्ग अङ्गीकार करता है, वही इस संसारके पार उतरता है। राजन्! यह संसार बड़ा ही गहन, भयानक और झूठा है, इसलिये इसके असल स्वरूपको जानकर आत्मा, शरीर और सम्पत्ति दोनोंको स्थिर कर ऐश्वर्यका आचरण करना चाहिये। मोहमें मग्न होकर, लोगोंमें इधर-उधर घूमकर और लोभमें पड़कर मनुष्य नाना प्रकारके बहुत दुःख भोग करता रहता है और संसारमें भ्रमण करता हुआ अनन्त दुःख प्राप्त करता है। इसलिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

मद, मत्सर, और हर्ष रूपी छः भीतरी शत्रुओंको वशमें करना ही मनुष्यके लिये उचित है। इसीसे शुद्ध आत्म-स्वभाव प्रकट होता है और मनुष्य सहजही संसारके पार पहुँच जाता है।"

योगिनीकी ऐसी वैराग्य-पूर्ण बातें सुन, राजाका चित्त बहुत कुछ शान्त हुआ और वे चन्द्राङ्कको साथ लिये हुए अपने नगरके बागीचेमें आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने चन्द्राङ्कको नगरमें भेज दिया और वहाँसे अपने पुत्र और प्रधान इत्यादिको बुलवा कर कहा,—"जैसे गुलाम बनकर आदमी घोर कष्ट पाता है, वैसेही इस संसारकी दासता करके मैंने भी बड़े दुःख उठाये। अब मैं जाकर दीक्षा ग्रहण करता हूँ। अब मैं तुम्हारे नगरमें पैर न रखूँगा। इस लिये मेरे पीछेमें मेरा यह राज्य शुकराजको ही देना।"

मन्त्रियोंने कहा,—"महाराज! आप कृपा कर घर चलें। इसमें कौनसा दोष है? निर्मोही मनुष्यके लिये तो घर भी जङ्गल है और मोहित मनुष्यके लिये जङ्गल भी घर ही है। मोह ही मनुष्यके लिये बन्धन स्वरूप है। जिसने मोह छोड़ दिया, उसके घर चलनेमें क्या दोष है!"

उन लोगोका यह आग्रह देख, राजा सबके साथ घर आये वहां चन्द्रशेखरने चन्द्राङ्कको राजाके साथ आते देख लिया। यक्षकी बात याद आ जानेके कारण वह उसी समय चुपचाप वहाँसे निकल भागा। इसके बाद राजा मृगध्वजने बड़ी धूम-धामसे शुकराजको राज्य देकर प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली। दीक्षा लेनेका विचार करतेही राजाके मुखदेश एक विचित्र

प्रकारकी शोभा विराजने लगी। सच है, चन्द्रमाका उदय होने पर रात्रि प्रकाशमान होही जाती है। रातभर राजा इसी सोच में पड़े रहे, कि कब सवेरा हो और मैं दीक्षा ग्रहण करूं? कब मैं निरतिचार सहित चारित्रका पालन करता हुआ विचरण करूँगा और कब मेरे सब कर्मोंका क्षय होगा? इसी तरहके विचारमें राजा एकबारगी लीन हो गये, रातभर इसी तरह शुभ भावना करते-करते प्रातःकाल होते-न-होते उनके कुल कर्मोंका क्षय हो गया और सूर्यके साथही साथ उनके केवल-ज्ञानका उदय हो आया। ऐहिक सुखके लिये किया हुआ कार्य कदाचित् विफल भी हो जाये; पर धर्मके स्वरूपका चिन्तन या उसके आचरणका सङ्कल्प-मात्र करनेसेही मनुष्यको इष्ट वस्तुकी प्राप्ती हो जाती है। इसी तरह राजा मृगध्वजको भी बिना परिश्रम-केही केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। इस लिये प्रत्येक मनुष्यको चाहिये, कि शुभ ध्यानमें प्रवृत्त हो कर धर्मके स्वरूपका चिन्तन करनेकी चेष्टा करे।

समग्र भावको जाननेवाले मृगध्वज-केवली को साधुका वेश अर्पण करनेके लिये देवताओंने वहाँ केवल ज्ञानका बड़ा भारी उत्सव किया। शुकराज और सभा आदि पर समाचार पा, बड़ हर्ष के साथ वहाँ आये। उस समय राजर्षि मृगध्वजने यह अमृत-समान देशना प्रदान की।

“हे भव्य प्राणियो! यह संसार एक बड़ा भारी समुद्र है। इसके पार उतरनेके लिये साधुधर्म और श्रावक-धर्म—येही दोनों

भली भाँति प्रजा-पालन करने लगे। महादुरात्मा चन्द्रशेखर अबतक चन्द्रावतीसे मिलना जुलना नहीं छोड़ता था। जिसमें निष्कण्टक मौज़ करनेमें आवे, इसके लिये वह शुकराजकी बुराई करनेकी फ़िक्रमें रहने लगा। उसने बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे तपस्या कर उस राज्यकी अधिष्ठात्री गोत्रदेवीको प्रसन्न कर लिया। कामान्ध मनुष्य क्या-क्या नहीं करता? देवीने प्रकट होकर कहा,—"बेटा! तूने किस लिये मेरी आराधना की? जो चाहे, वह माँग ले।"

चन्द्रशेखरने कहा,—"मुझे शुकराजका राज्य चाहिये।"

देवीने कहा,—"जिस प्रकार कोई सिंहके सामनेसे उसका आहार नहीं छीन सकता, वैसेही सम्यक्त्व-गुणसे सुशोभित शुकराजके राज्यको मैं उससे छीनकर तुम्हें नहीं दे सकती।"

चन्द्रशेखर—"यदि तुम सचमुच देवी हो और मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो छलसे, बलसे, जैसे हो सके, वैसे मुझे वह राज्य दिलवा दो।"

यह सुन, उसकी भक्तिसे सन्तुष्ट देवीने कहा,—"यहाँ बलकी कोई कला काम नहीं आयेगी छलसेही काम लेना होगा। जब शुकराज कहीं और चला जायेगा, तब मैं यहाँ आऊंगी। मेरे प्रभावसे तुम्हारा रूप शुकके समान हो जायेगा। फिर तुम मौज के साथ राज्य करना।"

यह कह, वह देवी अदृश्य हो गयी। चन्द्रशेखरने बड़ी ख़ुशी के साथ यह समाचार जाकर चन्द्रावतीको कह सुनाया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

एक दिन शुकराजने यात्रा करने के विचारसे अपनी दोनों स्त्रियोंको अपने पास बुलाकर कहा,—"मैं तीर्थ दर्शन करनेके इरादेसे उसी आश्रमकी ओर जाना चाहता हूँ।"

यह सुन उनकी स्त्रियोंने कहा,—"हम दोनों भी आपके साथ ही चलेंगी, क्योंकि एक तो हम आपके साथ रहेंगी, दूसरे, रास्तेमें माँ-बापसे भी मिलना हो जाता।"

लाचार, शुकराजने उनकी बात मान ली और उन्हें लिये हुए विमानपर बैठकर चलपड़ा उनसे भूल यही हुई, कि और किसीसे उन्होंने अपनी इस यात्रा की बात नहीं कही। इसी लिये और लोग इस बातसे बिलकुल ही अनजान रहे। चन्द्रावतीको यह बात मालूम हो गयी, क्योंकि वह इन दिनों शुकराजपर हर घड़ी निगाह रखती थी।

चन्द्रावतीसे खबर पाकर चन्द्रशेखर उसी समय उस नगरमें आ पहुँचा। देवीके वरके अनुसार वह ठीक शुकराजकी शकल-सूरतका हो गया। इस लिये सब लोग उसको शुकराज समझने

लगे। रातके समय चन्द्रशेखर झूठमूठ शोर मचाने लगा, कि दौड़ो—दौड़ो—कोई विद्याधर मेरी स्त्रियोंको लिये जा रहा है। यह शोर सुनकर सब लोग दौड़ पड़े और उसके पास आकर पूछने लगे,—“स्वामी! आपकी वे विद्याएँ क्या हो गयीं! उन्हीं से काम लीजिये न।”

यह सुन, चन्द्रशेखरने झटपट उत्तर दिया,—“मैं क्या करूँ! उस दुष्ट विद्याधरने ठीक उसी तरह मेरी विद्याएँ हरलीं, जैसे यम मनुष्योंके प्राण हर लेता है।”

उन लोगोंने कहा,—“ख़ैर, स्त्रियाँ और विद्याएँ गयीं, तो क्या हुआ; आपका शरीर तो बच गया। हम लोगोंको इसीकी ख़ुशी है।”

इस प्रकार चन्द्रशेखरने सब लोगोंपर अपने कपटका जाल फैलाकर सबको इस बातका विश्वास दिला दिया, कि यही शुकराज है। बस, फिर क्या था! वह मौजसे साथ चन्द्रावती के साथ भोग-विलास करने लगा।

इधर तीर्थोंका दर्शन कर, कुछ दिन अपनी ससुरालमें रहनेके बाद शुकराज अपने नगरको लौट आये और पहले उपवनमें ही ठहरे। चन्द्रशेखरने महलकी खिड़की परसे ही उन्हें देखकर शोर गुल मचाना शुरू किया। इसके बाद अपने आदमियोंको बुला-कर बोला —“जिस विद्याधरने मेरी स्त्रियोंको चुराया था, वही मेरा रूप धारण कर आया हुआ है। इस लिये तुम लोग इस के पास जाकर उसे मीठे मीठे वचनोंसे समझा बुझाकर पीछे लौट जानेको कहो, क्योंकि बुद्धिमान् का कथन है कि बलवानको

अपनी मीठी-मीठी बातों से ही राज़ी कर ले। तुम लोग चतुर मन्त्री और सलाहकार हो। तुम्हारे लिये यह काम कुछ कठिन नहीं है।" यह सुन, मन्त्री आदि सभी लोग बाहर चले आये।

सबको अपने पास आया देख, शुकराज विमानसे नीचे आकर उसी आमके पेड़के नीचे बैठ गये। यह देख, मन्त्रीने उनके पास पहुँचकर कहा,—"हे विद्याधरोंके राजा! आपकी शक्ति और सामर्थ्य अपार है। आपने हमारे स्वामीकी स्त्रियों और विद्याओंका हरण कर लिया है—इसलिये हम आपका प्रभाव भली भाँति जानते हैं। अब आप कृपा कर अपने स्थानको लौट जाइये। हमारे स्वामीने बड़ी विनयके साथ आपसे यही निवेदन करनेके लिये हमें आपके पास भेजा है।"

यह सुनतेही शुकराज मन-ही-मन सोचने लगे,—"ये सब पागल तो नहीं हो गये हैं! इन ऊटपटाङ्ग बातोंका क्या मतलब!" इसी तरह नाना प्रकारके सङ्कल्प-विकल्प करते हुए शुकराजने कहा—"मन्त्री! तुम क्या कह रहे हो! शुकराज—तुम्हारा राजा तो मैं ही हूं।"

मन्त्री,—"हे विद्याधर! हमें आप क्यों ठग रहे हो। मृगध्वज राजाके पुत्र शुकराज तो अपने घरमें ही मौजूद हैं। आप तो उन्हींका रूप धारण करने वाले विद्याधर हैं। बहुत कहने-सुननेका क्या काम है! हमारे स्वामी शुकराज आपसे वैसेही डरे हुए हैं, जैसे बिल्लीको देखकर चूहा डरता है। इसलिये आप शीघ्रही यहाँसे सिधार जाइये।"

इसलिये सुख और दुःख तथा सम्पत्ति और विपत्तिको कर्माधीन समझकर हर्ष विषादमें नहीं पड़ना चाहिये।

इसी तरह विमानमें बैठकर घूमते-फिरते हुए एक दिन उनका विमान नीचे गिर पड़ा। यह विपत्पर विपत् आयी हुई देख, शुकराज इसका कारण ढूंढने लगे, तो उन्होंने देखा, कि सुवर्ण-कमलके ऊपर बैठे हुए, देवताओंसे सेवित मृगध्वज केवली बैठे हुए हैं। जिनके दर्शन कर, उन्होंने प्रसन्न मनसे उन्हें प्रणाम किया। माताको अपना दुःख याद कर उनकी आँखोंमें आँसू आ गया। सच है, दुःखकी अवस्थामें अपना आदमी देख कर रुलाई आ ही जाती है। केवलज्ञानीने अपने ज्ञान बलसे उनका सारा हाल मालूम कर लिया। तोभी शुकराजने उनसे सब हाल कह सुनाया। क्योंकि मनुष्य अपने माँ बाप, मित्र, स्वामी और अपने आधीन मनुष्योंसे अपने दुःखकी कहानी सुनाकर उसका बोझा हल्का करता है।

गुरुने कहा,—"तुमने जैसा कर्म कर आये हो, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा फिर इसमें पछताने और खेद करनेसे तो कोई लाभ नहीं है।"

यह सुन शुकराजने कहा, "[illegible] मैंने पूर्वमें कौन ऐसा बुरा काम किया जिसका मुझे यह फल मिला?"

गुरुने कहा, "[illegible] सुन थी [illegible] और [illegible] हुए थे। [illegible] पति देवसे

धन्वन्तरीका सा वैद्य पाकर भी रोग रह जाये, यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। घरमें कल्पवृक्ष मौजूद रहते हुए दरिद्रता कैसे रह सकती है? सूर्योदय होनेपर भी अन्धकारका नामो-निशान थोड़े ही रह जाता है? इसलिये हे स्वामी! आप कृपाकर ऐसा कोई उपाय बतलाइये, जिससे मेरा यह दुःख दूर हो और मेरा गया हुआ राज्य लौट आये।"

उनकी यह प्रार्थना सुन, केवलज्ञानी महाराजने कहा,—"हे शुकराज! धर्म करने से दुःसाध्य कार्य भी सुसाध्य हो जाता है। पासही विमलाचल तीर्थ है। वहीं जा, तीर्थनायक प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव स्वामीको नमस्कार कर, भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति करनेके अनन्तर छः महीनेतक उसी पर्वतकी गुफामें रहते हुए परमेष्ठि-महामन्त्रका जप करो। इससे तुम्हारे शत्रु तुम्हें देखते ही भाग खड़े होंगे, उनका किया हुआ कपट निष्फल हो जायेगा, और तुम्हें सब तरहकी सिद्धि प्राप्त होगी। जिस समय गुफाके भीतर खूब प्रकाश फैल जाये, उसी समय समझ लेना कि तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया। बस यह अंतिम शत्रु को भी जीतनेका एक ही उपाय है।"

यह बात सुनकर शुकराज बड़े प्रसन्न हुए और विमान पर बैठकर विमलाचल तीर्थ चले आये और प्रथम तीर्थङ्कर देवकी वन्दना कर गुफामें बैठ छः महीनेतक परमेष्ठिमन्त्रका जप करने लगे। इसी तरह छः महीने बीत जानेपर एक दिन उन्होंने अपने पास एक बड़ा भारी तेज प्रकाश फैलता देखा

उसी समय गुणराजके भाग्योदयके साथ-साथ चन्द्रशेखरकी गोत्रदेवीकी महिमा भी घट गयी। उसने प्रकट होकर चन्द्रशेखरसे कहा,—"चन्द्रशेखर! अब तू जल्द यहाँसे भाग जा। अब तेरा गुणराजवाला रूप नष्ट हो चुका चाहता है।" यह कह वह कहीं गयी और चन्द्रशेखर फिर अपने असल रूपमें आ गया। यह देख वह तुरत ही आग लेकर चोरकी तरह भाग गया। गुणराज भी जब पूरा कर, अपने नगरमें आये। अबकी बार सबने इन्हें ही राजा मान लिया और इनका खूब आदर सत्कार किया। सब लोग ऐसा ख्याल करने लगे कि वह कोई दूसरा आदमी था, जो इस तरह कपटरूप धारण किये हुए था। परन्तु इसका और कोई पता किसीको नहीं लगा।

[illegible]

सार्थक नाम रख दिया। उस दिनसे इस पर्वतका यह नाम पृथ्वी तलमें प्रसिद्ध हो गया। जिनेश्वर भगवानके दर्शन करने से चन्द्रशेखरको भी अपने पाप कर्मोंपर पछतावा होने लगा। उसने सर्व कर्मोंका क्षय कर, केवलज्ञानी मुनीश्वरसे पूछा,—"हे भगवन्! मेरे मनका मैल कैसे धुलेगा?"

मुनीश्वरने कहा,—"अपनेसब पापोंको अच्छी तरह याद करते हुए इस तीर्थमें रहकर निरन्तर तप करनेसे तेरे सब पाप धुल जायेंगे और तेरा मन निर्मल हो जायेगा। कहा भी है, कि—

जन्मकोटिकृतमेकहेलयाकर्म तीव्रतपसा विलीयते।
किं न दाह्यमपि बह्वपि क्षया दुच्छ्रितेन शिखिनात्र दह्यते!

अर्थात्—कठिन तपस्या करनेसे करोड़ों जन्मका किया हुआ पाप सहज ही नष्ट हो जाता है चाहे कैसी भी कड़ी चीज़ क्यों न हो और संख्यामें कितनी ही अधिक क्यों न हो; पर आग उसे जलाही देती है। इसी तरह तप भी पापों को जलाकर खाक कर देता है।"

मुनि महाराजकी यह बात सुन, वैराग्य प्राप्त कर चन्द्रशेखरने अपने सब पापोंकी आलोचना करते हुए मृगध्वज केवली से दीक्षा अङ्गीकार कर ली। इसके बाद वह बड़ा उग्र तपस्या करता हुआ उसी तीर्थपर मोक्षको प्राप्त हुआ।

अहा! तीर्थ-भूमिकी भी कैसी विशाल महिमा है। जिस मनुष्यने एक मुद्दततक अपनी बहनके साथ व्यभिचार किया, वह भी तपस्या करके शीघ्रही मुक्ति पा गया। यह तीर्थकी ही बलिहारी है!

उपसंहार

अब निष्कण्टक होकर राज्य करते हुए [illegible] अत्यन्त [illegible]-धर्मके सेवक और [illegible] राजा-ओंके लिये आदर्शस्वरूप हो गये। वे [illegible] और [illegible]—इन दोनोंको ही वश करते हुए [illegible] [illegible]। वे दोनों [illegible] करते और [illegible]—इन चारों [illegible] करने और [illegible] प्रकारसे [illegible] करने लगे। [illegible] और [illegible] और [illegible] हैं [illegible] उनको [illegible]। [illegible] [illegible] हुआ, जिसका नाम [illegible] रक्खा गया। इसके बाद [illegible] दोनोंके [illegible] एक पुत्र हुआ, जिसका नाम [illegible] रक्खा गया। पुत्र [illegible] ही [illegible] होता है, [illegible] [illegible] [illegible] पुत्र [illegible] [illegible] हुए।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करते हुए [illegible] [illegible] [illegible]

के साथ जंगलकी ओर चले गये। सबसे पहले उन्होंने शत्रुंजय-तीर्थ में ही जानेकी इच्छा की। उस तीर्थपर पहुँचतेही उन्हें केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। सच है, महात्माओंको पदार्थोंका लाभ भी बड़े विचित्र ढंगसे होता है। इसके बाद बहुत दिनों तक पृथ्वीमें विहार करते हुए प्राणियोंके अज्ञानान्धकारका नाश करनेके अनन्तर शुकराज केवलीने अपनी दोनों स्त्रियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया।

बस, पाठको! हमारा यह चरित्र यहीं समाप्त होता है। अब हम आपसे विदा होनेके पहले यही कहना चाहते हैं, कि सदा अच्छे गुणोंका संग्रह करनेसे शुकराजने इस संसारमें भी सुख पाया और अन्तमें मोक्षपद भी प्राप्त किया। इस लिये मनुष्यको चाहिये, कि सदा अच्छे गुणोंको अपने जीवनमें लानेकी चेष्टा करे। तीर्थकी महिमा ऐसा प्रबल है, कि इसीके द्वारा शुकराजने अपना गया हुआ राज्य पाया और शत्रुओंका नाश कर डाला। महाराजा चन्द्रशेखरने भी तीर्थमें आकर तपस्याके द्वारा अपने दुष्कर्मोंका क्षय किया। इसलिये तीर्थ और मन्त्र, जप और तपमें सदा प्रीति रखनी चाहिये। इससे पापी भी पुण्यात्मा बन जाता है। फिर जो आदमी आपही अच्छा है, उसको इन पुण्य-कर्मोंका आचरण करने से कितना लाभ होगा, यह सोचनेकी बात है।